मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 133 ● वर्ष 14, अंक 9 ● नवम्बर 2024 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

अर्थशास्त्र का नोबेल : पूँजीवाद के इतिहास से उपनिवेशवाद के ख़ूनी दाग़ साफ़ करने के प्रयासों का ईनाम 8

अमेरिका में धुर-दक्षिणपंथी डोनाल्ड ट्रम्प की अन्तरविरोधों से भरी जीत के राजनीतिक मायने 11

महान कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं के कुछ अंश 15

महाराष्ट्र में भाजपा-नीत गठबन्धन की जीत और झारखण्ड में कांग्रेस-नीत इण्डिया गठबन्धन की जीत के मज़दूर वर्ग के लिए मायने

सम्पादकीय अग्रलेख

महाराष्ट्र में इस वर्ष हुए लोकसभा चुनावों में भाजपा-नीत गठबन्धन के बुरे प्रदर्शन के बाद से क़यास लगाये जा रहे थे कि विधानसभा चुनावों में भी भाजपा और उसके नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन की हालत पतली रहने वाली है। कुछ लोगों का मानना था कि जरांगे पाटिल के नेतृत्व में चल रहे मराठा आरक्षण आन्दोलन के कारण भाजपा का सफ़ाया होगा, क्योंकि पाटिल के निशाने पर अधिकांशत: भाजपा-शिवसेना (एकनाथ शिन्दे)-एनसीपी (अजित पवार) गठबन्धन की सरकार रही है और विशेष तौर पर भाजपा का प्रमुख नेता और महाराष्ट्र का उपमुख्यमन्त्री देवेन्द्र फडनवीस रहा है। अपना पूरा विश्लेषण ही जाति की गतिकी पर टिका देने वाले और समाज में वर्गीय गतिकी को भूल जाने वालों को लग रहा था कि इस मराठा अस्मितावादी राजनीति का फ़ायदा कांग्रेस-नीत गठबन्धन और विशेष तौर पर एनसीपी (शरद पवार) गुट को पहुँचेगा। लेकिन हुआ इसका उल्टा। इसी तरह से कुछ लोगों को यह भी लग रहा था कि भाजपा को शिवसेना और एनसीपी को तोड़ने वाली पार्टी होने के नाते जनता के ग़ुस्से का सामना करना पड़ेगा और इसके कारण भी लोग भाजपा को वोट नहीं देंगे। फ़ासीवाद की हार के वास्ते केवल प्रार्थना करने और मन्नतें माँगने वाले उदारवादी लोगों की इस आशा पर भी तुषारापात हो गया। वजह यह कि जनता इस मसले पर ग़ुस्सा लोकसभा चुनावों में जता चुकी थी।

महाराष्ट्र में भाजपा और उसके सहयोगियों की जीत की असल वजहों को समझने के लिए समाज में मौजूद वर्गीय अन्तरविरोधों और फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा उन अन्तरविरोधों का अपनी फ़िरकापरस्त राजनीति और विचारधारा के ज़रिये इस्तेमाल कर उसे एक ग़लत रूप देने की प्रक्रिया को समझना होगा। जातिगत राजनीति के सभी कारक इसी वर्गीय विश्लेषण द्वारा उपस्थित सीमाओं के भीतर ही काम करते हैं और महाराष्ट्र के बीते विधानसभा चुनावों में भी यही बात देखने को मिली। दूसरी बात यह कि जो लोग कुछ अख़बारी विश्लेषण या ऑनलाइन चर्चाओं को देखकर भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बीच मौजूद तनाव का विश्लेषण करते हुए वह भी पढ़ लेते हैं जो लिखा नहीं है, वे भी कुछ निराश और हतप्रभ हैं। वास्तव में, वे समझ नहीं पाते कि फ़ासीवादी राजनीति और संगठन के भीतर मौजूद झगड़े और अन्तरविरोध एक ही परिवार के भीतर होने वाले झगड़ों के समान हैं। देश की जनता और मेहनतकश लोगों के ख़िलाफ़ फ़ासीवादी एक हैं। यह बात इस तथ्य से सिद्ध हुई कि इस बार महाराष्ट्र में सात दशकों के इतिहास में किसी भी पार्टी को मिली सबसे बड़ी जीत के पीछे, यानी भाजपा की जीत के पीछे, संघ और उसकी काडर ताक़त का बहुत बड़ा योगदान था। संघ ने अपने व्यापक सांगठनिक नेटवर्क, अपनी काडर शक्ति का जमकर और बहुत चालाकी के साथ इस्तेमाल किया और उसका नतीजा भी सामने आया। इसके अलावा, चुनिन्दा सीटों पर ईवीएम घपले के इस्तेमाल, राज्य की मशीनरी के इस्तेमाल और अन्य प्रकार के गोरखधन्धे के इस्तेमाल की भी एक भूमिका निश्चित ही थी, जो कि इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवादी शासन की ख़ासियत है। इसलिए इन

(पेज 9 पर जारी)

देशभर में साम्प्रदायिक उन्माद और नफ़रत का माहौल बनाने में जुटे संघ और भाजपा

● अदिति

मोदी-नीत गठबन्धन सरकार के तीसरी बार सत्ता में पहुँचने के बाद सड़क पर फ़ासीवादी हिंसा की बढ़ती घटनाएँ हम देख रहे हैं। लोकसभा चुनाव में भाजपा के '400 पार' के नारे के फेल होने और सीटें घट जाने पर फ़ासिस्टों की बौखलाहट तरह-तरह से सामने आ रही है। देशभर में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने में संघी फ़ासीवादी अपनी एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं। हाल ही में उत्तर प्रदेश के पीलीभीत में, महाराष्ट्र के बीड और इगतपुरी में, हिमाचल के शिमला, मंडी और संजौली में, उत्तराखण्ड में, चरखी दादरी में और मध्यप्रदेश के खरगोन में साम्प्रदायिक घटनाएँ देखने को मिली। इन सारी ही घटनाओं में आरोपी भाजपा या संघ परिवार के किसी आनुषंगिक संगठन से जुड़े हुए थे। इनमें से ज़्यादातर लोग स्वयं को "गौ-रक्षक" बताते हैं एवं गोकशी करने वालों को मौत के घाट उतार कर उन्हें सज़ा देने को "पवित्र काम" मानते हैं। हालाँकि ज़्यादातर घटनाओं में से में गोकशी की बात पूरी तरह से झूठी पायी गयी है। आइए, एक बार हालिया साम्प्रदायिक घटनाओं पर नज़र डालते हैं।

हरियाणा में चुनाव से पहले प्रदेश में दंगों का माहौल बनाया गया। इसी बीच कई मॉब-लिंचिंग यानी उन्मादी फ़ासीवादी भीड़ द्वारा हत्याओं या हिंसा की घटनाएँ हरियाणा में देखने को मिलीं।

• हरियाणा के चरखी दादरी ज़िले में स्थित बाढड़ा में पश्चिम बंगाल के रहने वाले युवक साबिर मलिक हत्याकाण्ड में बड़ा खुलासा हुआ। साबिर पर गाय का मांस खाने का आरोप लगाकर कथित गौरक्षकों ने पीट-पीटकर उसकी हत्या कर दी थी। लैब जाँच के दौरान जो मांस झुग्गियों से ज़ब्त किया गया था वो गोमांस नहीं पाया गया। "कार्रवाई" के नाम पर 10 गिरफ़्तारियाँ हुई, 6 आरोपी अभी भी फरार है। शक़ के आधार पर ही साबिर को भी अख़लाक़ की तरह मौत के घाट उतार दिया गया।

• अक्टूबर में उत्तर प्रदेश के बहराइच में दुर्गा पूजा विसर्जन के दौरान हुई हिंसा ने दंगे का रूप ले लिया। हिंसा की शुरुआत शोभायात्रा में बज रहे डीजे से हुई। बहराइच में महसी तहसील के महराजगंज कस्बे में गाने को लेकर हुए विवाद के बाद पथराव शुरू हुआ। इसके बाद हुई हिंसा में एक युवक गोपाल मिश्रा की मौत की घटना सामने आयी। एक वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल भी हुआ, जिसमें साफ़ दिख रहा था कि कैसे गोपाल मिश्रा पहले एक मुस्लिम के घर की छत पर चढ़ता है और वहाँ लगे हरे झण्डे को हटा देता है और उसकी जगह भगवा झण्डा लगा देता है और उन्मादी नारे लगाने लगता है। इस घटना के बाद बहराइच में जगह-जगह आगजनी, तोड़फोड़ और पथराव की खबरें सामने आयी। इस पूरे मसले में भी पुलिस प्रशासन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। जब यह ख़बर देश भर में फैल गयी तो यूपी पुलिस ने "कार्रवाई" के

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

अक्सर कुछ लोग कहते हैं कि दिल्ली में दिल्ली में मजदूरों की तनखा देश के बहुत से राज्यों में मज़दूरों के न्यूनतम वेतन से ज़्यादा है। यानी राजधानी के मज़दूर तो बड़े मज़े में रहते हैं। लेकिन असलियत क्या है?

अभी दिल्ली की मुख्यमंत्री आतिशी ने अकुशल मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी 17,494 से बढ़ाकर 18,066 कर दी और इसके लिए अपनी काफ़ी पीठ भी ठोंकी। अर्धकुशल की इससे थोड़ी ज़्यादा और कुशल की करीब 21,000 रुपये है। हालाँकि सभी जानते हैं कि 90 प्रतिशत के लगभग मज़दूर अकुशल की ही तनखा पाते हैं क्योंकि मालिक हर तरह के काम उनसे करा लेते हैं। अब ये बताइए कि क्या दिल्ली में 18,000 रुपये में कोई इंसान की तरह की तरह का जीवन जी सकता है? गन्दी झुग्गी में छोटे-से कमरे का किराया भी एक तिहाई से ज़्यादा तनखा माँगता है। खाना-पीना, आना-जाना सबकुछ बहुत महँगा है। अकेला बन्दा जिस पर कोई ज़िम्मेदारी न हो, वो तो कुछ दिन मज़े में गुज़ार लेगा, कई मज़दूरों के साथ एक ही कमरे में रहकर। लेकिन अगर परिवार साथ में है या गाँव-घर में गुज़ारे के लिए पैसे भेजने पड़ते हैं तो जीना मुश्किल हो जाता है।

ना सही से खाने को ना ही जीने का कोई उत्साह। सुबह जगो तो काम के लिए, नहाओ तो काम के लिए, खाओ तो काम के लिए, रात बारह बजे सोओ तो काम के लिए। ऐसा लगता है की हम सिर्फ काम करने के लिए पैदा हुए हैं तो हम फिर अपना जीवन कब जियेंगे। महीने की सात से दस तारीख के बीच तनखा मिलती है, पन्द्रह तारीख तक जेब में पैसे होते हैं तो अपने बच्चों के लिए फल या कुछ ज़रूरी चीजें ले सकते हैं। उसके बाद हर दिन एक-एक रुपया सोचकर खर्च करना पड़ता है। महीना ख़त्म होते-होते ये भी सोच ख़त्म हो जाती है। अगर कहीं बीमार पड़ गये तो क़र्ज़ के बोझ तले दबना तय है। इस व्यवस्था के पास मज़दूरों को देने के लिए कुछ भी नहीं है। ये हालत बहुत दिनों तक ऐसे ही नहीं चल सकती। इस व्यवस्था को आग लगाकर नयी व्यवस्था खड़ी करने के लिए मज़दूर उठ खड़े होंगे। अगर मज़दूर ऐसा नहीं करता तो सरकारें ग़रीबों-मज़दूरों को इतना पीस डालेंगी कि फिर वो कुछ करने लायक ही नहीं रहेगा।

– एक मज़दूर
बवाना, दिल्ली

विकास की चिट्ठी

मेरा नाम विकास कुमार है। मैं बिहार का रहनेवाला हूँ और हरियाणा में काम करता हूँ। मैं घर से करीब 1100 किलोमीटर दूर रोजी रोटी कमाने आया हूँ। मेरी उम्र 19 साल है। मैंने नवीं कक्षा तक की पढाई की है । तीन भाई और एक बहन में मैं सबसे बड़ा हूँ। मजबूरी के कारण मुझे कम उम्र में ही पढाई छोड़कर काम करने जाना पड़ा। मेरे पिताजी ऑटो चलाते थे, एक दिन उनकी गाडी पलट गयी जिसके कारण नौ लोग घायल हो गए, इस वजह से 3-4 लाख खर्च हो गया था, और क़र्ज़ चढ़ गया था। पढने की इच्छा थी फिर भी मुझे मजबूरी में आना पड़ा।

अगली बार जब गाँव गया तो, मेरे दोस्त मुझे दुबारा बहार जा कर कामने से रोक रहे थे, मेरी भी वही इच्छा थी लेकिन मुझे मजबूरी में आना पड़ा। जब मैं पहली बार गाँव से बहार निकला तो दिल्ली गया। वहाँ मैंने समयपुर बदली में पौचिंग लाइन में काम किया। बहुत काम करने के बावजूद वहाँ पर काम चलने लायक भी पैसा नहीं मिलता था। फिर मैं वहाँ से हरियाणा आया बिनोला गाँव में, यहाँ मेरे रिश्तेदार रहते थे। यहाँ पर बहुत सारे कारखाने थे। यहाँ अधिकतर कारखानों मैं गाड़ियों के पुर्जे बनते थे। तब मुझे समझ में आया कि जो गाड़ियाँ सड़कों पर बड़ी तेज़ी से दौड़ती हैं उन्हें मेरे जैसे लड़के और मज़दूर बनाते हैं। हर तरफ मजदूरों का रेला था। यहाँ से थोड़ी दूर पर मानेसर-गुडगाँव-धारूहेड़ा-बावल -हर तरफ़ मजदूरों का ऐसा ही झुण्ड दिखता था।

मैं अपने रिश्तेदार के साथ लॉज में उनके कमरे पर रुका। उन छोटे कमरों में मेरा दम घुटता है। एक कमरे में हमलोग 4 से 5 आदमी रहते हैं। मेरे रिश्तेदार मार्क एग्जौस्ट सिस्टम लिमिटेड मैं काम करते थे। उन्होंने मेरा काम मीनाक्षी पोलिमर्स में लगवा दिया। यहाँ पर करीब 100 लोग काम करते थे। यहाँ बहुत बुरी तरह से हमारा शोषण होता था। कम्पनी फ़र्श पर झाड़ू-पोछा भी लगवाती थी और कभी प्रोडक्शन का काम नहीं हो तो नाली वगैरह भी साफ़ करवाती थी। काम जबरिया दबाव में कराया जाता था, बारह घण्टे का काम आठ घण्टे में करवाया जाता था। अन्दर में बैठने की व्यवस्था नहीं था। बारिश के समय खाने पीने के लिए कोई जगह नहीं थी। गर्मी में काम करवाया जाता और पीने के लिए गर्म पानी दिया जाता। मैं दिन-रात मेहनत करता था ताकि कुछ पैसे कमा बचा सकूँ। लेकिन यहाँ मालिक ज़िन्दा रहने लायक भी पैसा नहीं दे रहा था। हम अपना हक माँग रहे हैं और मालिक दे नहीं रहा है, हम यूनियन बनाने का प्रयास कर रहे हैं मालिक बनने नहीं दे रहा है। मैं जीवन में आगे बढ़ना चाहता हूँ, लेकिन मैं अब समझ गया हूँ कि मैं अकेले आगे नहीं बढ़ सकता। हम सबकी ज़िन्दगी ख़राब है इसीलिए हम सभी को एक साथ मिलकर लड़ना चाहिए। इसीलिए दोस्तों और मजदूर भाइयो अपना हक माँगो और यूनियन बनाओ।

– विकास,
ऑटोमोबाइल मज़दूर, गुड़गाँव

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

अदालत ने भी माना : आँगनवाड़ीकर्मी हैं सरकारी कर्मचारी के दर्जे की हक़दार!

● वृषाली

देश भर में तक़रीबन 1 करोड़ स्कीम वर्कर कार्यरत हैं। इनमें से 23.71 लाख आँगनवाड़ीकर्मी हैं। ये 1 करोड़ महिलाएँ वे हैं जिन्हें "सशक्त" करने के नाम पर सस्ते श्रम के स्रोत के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। सरकार की ओर से चलने वाली बेहद ज़रूरी स्कीमों में ये महिलाकर्मी ज़मीनी स्तर पर कार्यरत महिलाएँ हैं। 'समेकित बाल विकास परियोजना' 1975 में बेहद सस्ती दरों पर बच्चों, गर्भवती महिलाओं आदि की देखरेख व पोषण तथा बुनियादी शिक्षा मुहैया कराने के मक़सद के साथ शुरू की गयी थी। इन बुनियादी ज़िम्मेदारियों के अलावा आज आँगनवाड़ीकर्मियों के कामों का बोझ कई गुना बढ़ाया जा चुका है। मौजूदा मोदी सरकार तो इन तथाकथित "स्वयंसेविकाओं" पर नयी शिक्षा नीति के तहत प्राथमिक शिक्षकों की ज़िम्मेदारी सौंपने की तैयारी में हैं। लेकिन बावजूद इसके, सरकार इन महिलाकर्मियों को सरकारी कर्मचारी का दर्जा देने को तैयार नहीं, न्यूनतम वेतन तक देने को तैयार नहीं। सरकार का समेकित बाल विकास परियोजना के प्रति कितना सरोकार है यह इस तथ्य से साफ़ है कि इस योजना की शुरुआत के लगभग 50 साल बाद भारत विश्व भूख सूचकांक में 127 देशों की सूची में 105वें स्थान पर खड़ा है।

समेकित बाल विकास परियोजना को ज़मीनी स्तर पर लागू करने वाली आँगनवाड़ीकर्मी देश भर में संघर्षरत हैं। उनकी मुख्य माँग यह है कि उन्हें सरकारी कर्मचारी का दर्जा दिया जाये, न्यूनतम वेतन, पेंशन, ग्रेच्युटी इत्यादि सुविधायें दी जायें, समेकित बाल विकास परियोजना के तहत मिलने वाली सुविधाओं को बेहतर किया जाये। जितने दबाव में आज आँगनवाड़ीकर्मी काम करने को मजबूर हैं, उस अनुसार उन्हें दिया जाने वाला मानदेय उन महिलाकर्मियों के साथ एक भद्दा मज़ाक है। दिल्ली जैसे शहर में भी 2017 से पहले आँगनवाड़ी वर्करों को 5000 रुपये व हेल्परों को 2500 रुपये की मामूली राशि दी जाती थी। दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी 'यूनियन 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेलपर्स यूनियन' के बैनर तले चले संघर्ष के दम पर 2017 और 2022 में मानदेय बढ़ोत्तरी हासिल की थी। पिछले कुछ सालों में देश भर में आँगनवाड़ीकर्मियों के कई राज्यों में आन्दोलन तेज़ हुए हैं और इसके साथ ही सरकार की दमन की कार्रवाई भी तेज़ हुई है। 2022 में दिल्ली में आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल पर 'हेस्मा' क़ानून थोपे जाने के बाद 2024 में आन्ध्र प्रदेश में भी आँगनवाड़ीकर्मियों के आन्दोलन को ख़त्म करने के लिए 'एस्मा' का इस्तेमाल किया गया। जिन सरकारों की नज़रों में आँगनवाड़ीकर्मी महज़ "स्वयंसेविकाएं" हैं, उनके आन्दोलन से भयाक्रान्त सरकारें हड़ताल तोड़ने के वक़्त सरकारी कर्मचारियों पर इस्तेमाल किए जाने वाले काले क़ानून थोप रही हैं!

दमन की इन कार्रवाइयों के बावजूद आँगनवाड़ीकर्मियों का संघर्ष देशभर में जारी है। आँगनवाड़ीकर्मियों की सरकारी कर्मचारी के माँग के मसले पर कई राज्यों के उच्च न्यायालयों में भी अलग-अलग यूनियनों ने अर्ज़ियाँ दायर की गयी हैं। इस मद्देनज़र हाल में कई महत्वपूर्ण बयान और फ़ैसले आये हैं। वर्ष 2022 में सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा था कि आँगनवाड़ीकर्मियों को ग्रेच्युटी दी जानी चाहिए और इस दिशा में केन्द्र व राज्य सरकारों को ज़रूरी क़दम उठाने चाहिए। अब **बीते 30 अक्टूबर को गुजरात हाईकोर्ट द्वारा का बहुत महत्वपूर्ण फैसला आया है जिसमें केन्द्र व सभी राज्य सरकारों को यह आदेश दिया गया है कि वे आँगनवाड़ीकर्मियों को नियमित करने की दिशा में ठोस योजना बनाये। इसके साथ ही इस आदेश में यह भी बात कही गयी है कि जबतक आँगनवाड़ीकर्मियों को नियमित करने की योजना लागू नहीं होती है तब तक उन्हें ग्रेड 3 व ग्रेड 4 रैंक के सरकारी कर्मचारियों को मिलने वाला वेतन और तमाम अन्य सुविधाएँ मुहैया करायी जायें। इस फ़ैसले को राज्य सरकार और केन्द्र सरकार द्वारा तुरन्त संज्ञान में लेते हुए इसपर कारवाई शुरू की जाये।**

यह फ़ैसला लम्बे समय से संघर्षरत आँगनवाड़ीकर्मियों के संघर्ष का ही नतीजा है। कर्मचारी के दर्जे की माँग की हमारी लड़ाई को आगे ले जाने के में यह एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' देश भर की आँगनवाड़ीकर्मियों को इसके लिए बधाई देती है। लेकिन हमें कोर्ट के इस आदेश मात्र से निश्चिन्त होकर नहीं बैठ जाना होगा। देश भर में आन्दोलनरत स्कीम वर्करों के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती यह है कि किस प्रकार एक स्वतन्त्र और इन्क़लाबी यूनियनें खड़ी की जायें और अलग-अलग राज्यों में बिखरे हुए इन आन्दोलनों को एक सूत्र में पिरोया जाये। आँगनवाड़ीकर्मियों को सरकारी कर्मचारी का दर्जा देने के लिए नीति में ज़रूरी बदलाव केन्द्र सरकार के हाथों में है। इसके लिए केन्द्र सरकार के खिलाफ़ संघर्ष को तेज़ करने और देशभर में आँगनवाड़ीकर्मियों को एकजुट करने की ज़रूरत है।

कुसुमपुर पहाड़ी में मेहनतकशों-नौजवानों की जीवन स्थिति पर एक छात्र की चिट्ठी

● सागर

मेरा नाम सागर है। मैं दिल्ली के जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (जेएनयू) में चीनी भाषा में बीए कर रहा हूँ। विश्वविद्यालय के हम कुछ छात्र पिछले एक साल से कुसुमपुर पहाड़ी नाम के एक मज़दूर इलाक़े में बच्चों को नियमित पढ़ा रहे हैं और यहाँ के लोगों की राजनीतिक चेतना को उन्नत करने का काम भी कर रहे हैं। इस दौरान मैंने यहाँ के मेहनतकशों और नौजवानों की जीवन स्थिति के बारे में जो देखा, उसे मज़दूर बिगुल के पाठकों के साथ साझा करना चाहूँगा।

देश की राजधानी दिल्ली में क़रीब 700 मज़दूर बस्तियाँ हैं। उनमें से एक कुसुमपुर पहाड़ी है, जो दक्षिण दिल्ली में स्थित एक बड़ा रिहायशी इलाक़ा है। दिल्ली शहरी सुधार आश्रय बोर्ड (DSUIB) का डेटा बताता है कि कुसुमपुर में 4,909 घर हैं। 2011 के जनगणना के अनुसार इस इलाक़े में 17,028 लोग रहते हैं, हालाँकि स्थानीय लोगों की मानें तो यह संख्या अब लगभग 40 हज़ार है। यहाँ मुख्यतः राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु से आये मेहनतकश रहते हैं। कुछ हिस्सों में बिहार और पश्चिम बंगाल के लोग भी मिल जायेंगे। दक्षिण दिल्ली के वसंत विहार और वसंत कुंज जैसे इलाक़ों की बड़ी बड़ी कोठियों, अपार्टमेंटों और एम्बेसियों की विलासिता और चकाचौंध के बीच कुसुमपुर पहाड़ी जैसी मज़दूर बस्तियाँ, जहाँ बुनियादी नागरिक सुविधाएं भी नहीं पहुँची हैं, अक़्सर आँखों से ओझल हो जाती हैं। या यूँ कहें कि दिल्ली की शहरी योजना और आर्किटेक्चर ही कुछ इस प्रकार बनायी गयी है कि मज़दूर मेहनतकशों की गन्दी रिहायशी इलाक़ें शहर के कुलीन वर्ग, नेताओं, नौकरशाहों, विदेशी राजदूतों के आँखों की किरकिरी न बनें।

कुसुमपुर में रह रहे लोगों के लिए सबसे बड़ी समस्या पानी की है। यहाँ पक्के पाइप लाइन की सुविधा उपलब्ध नहीं है जिसके कारण लोगों तक साफ़ पानी पहुँच नहीं पाता है। पानी की कमी की पूर्ति के लिए दिल्ली सरकार "दिल्ली जल बोर्ड" (DJB) के टैंकर भेजती है। असल में इन टैंकरों पर टैंकर माफ़ियाओं का एकाधिकार होता है जो प्रति कनस्तर 10 रुपये की दर से पानी बेचते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुसुमपुर के मेहनतकशों की दिनचर्या पानी और टैंकरों के इर्दगिर्द ही घूमती है। टैंकर से पानी भरने के लिए घण्टों लाइन में खड़ा रहना पड़ता है और जल्दी पानी भरने की होड़ में आये दिन सिरफुटव्वल होता रहता है। कभी पानी भरने में देरी हो जाये या टैंकर के कारण पतली गलियों में जाम लग जाये तो बच्चों के एग्जाम छूट जाते हैं और कई बार लोगों को अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है। लोग रास्ते से 40-40 लीटर के कनस्तरों को अपने घरों तक ढोकर लाते हैं जिसके कारण महिलाओं और बच्चों के कमर और घुटनों में दर्द एक आम बात बन चुकी है। बूढ़े लोग जो कनस्तर नहीं उठा सकते वे 10 रुपये देकर ये काम किसी और से करवाते हैं। कुसुमपुर के मेहनतकशों की आमदनी का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा पानी पर खर्च होता है। हर चुनाव से पहले आम आदमी पार्टी और भाजपा से लेकर सभी चुनावबाज पार्टियाँ यहाँ पानी के नाम पर ही वोट माँगती हैं। लेकिन पक्के पानी की सुविधा कुसुमपुर के मेहनतकशों के लिए फिलहाल एक दूर की कौड़ी ही है।

कुसुमपुर के घरों और गलियों की हालत भी कुछ ख़ास अच्छी नहीं है। घर के छोटे-छोटे कमरों में न तो रौशनी आती है और न ही ताज़ी हवा। इन माचिस की डिब्बी जैसे घरों से बाहर निकलते ही तंग, गीली, गन्दी गलियाँ और बजबजाती नालियाँ मिलती हैं। गालियों में कूड़ेदान न होने के कारण गलियों में ही कचरे का ढेर लग जाता है। गलियों में बिजली के नंगे तार लटकते रहते है, जिससे लोगों को बिजली का झटका लगने का डर बना रहता है। कुसुमपुर के बच्चों और नौजवानों के पास खेलने, टहलने या व्यायाम करने के लिए कोई पार्क, मैदान या खुली जिम नहीं है। मद्रासी मन्दिर के सामने जो एक छोटी जगह है वह मैदान कम और कूड़ेदान ज़्यादा है। ग़रीबी और भुखमरी की मार झेल रहे मेहनतकशों को एक स्वच्छ और स्वस्थ माहौल भी नहीं मिल पाता जिसके कारण यहाँ ज़्यादातर लोग किसी न किसी बीमारी से जूझ रहे हैं। यहाँ सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा के नाम पर बस एक डिस्पेंसरी है जिसमें न तो पर्याप्त कर्मचारी हैं और न ही ढंग के उपकरण और दवाइयाँ। ज़्यादा बीमार होने पर या तो लोगों को कर्ज लेकर प्राइवेट क्लीनिक या हॉस्पिटल जाना पड़ता है या एम्स और सफ़दरजंग जैसे सरकारी अस्पतालों में कई दिनों तक चप्पलें घिसनी पड़ती हैं।

कुसुमपुर पहाड़ी के ज़्यादातर लोग वसंत विहार, वसंत कुंज और आस पास के अन्य समृद्ध इलाक़ों में झाड़ू-पोंछा, बर्तन, कपड़े धोना, खाना बनाना, माली या गार्ड जैसे घरेलू काम करते हैं। कुछ लोग पास के जेएनयू में सफ़ाई कर्मचारी के तौर पर काम करते हैं। इसके अलावा कई लोग बेलदारी, पास के लेबर चौक पर दिहाड़ी मज़दूरी, किसी दुकान में हेल्पर का काम करते हैं, स्विगी-ज़ोमैटो-ब्लिंकिट आदि की डिलीवरी करते हैं या अपना रेहड़ी-खोमचा लगाते हैं। सुबह के समय शोषण की चक्की में पिसने के लिए इस बस्ती से इन मज़दूरों की लम्बी रेल निकलती है। मुनाफ़े की भट्टी में 10-12 घण्टों तक अपनी हड्डियाँ गलाने के बाद जब वे वापस बस्ती में लौटते हैं, यहाँ न तो उन्हें रहने का अच्छा माहौल मिलता है, न पीने का साफ़ पानी और न ही साँस लेने के लिए ताज़ी हवा। क्या ऐसी ज़िन्दगी किसी जहन्नुम से कम है?

वैसे तो कुसुमपुर के आसपास कई स्कूल हैं लेकिन यहाँ के ज़्यादातर बच्चे दिल्ली सरकार द्वारा चलाये जा रहे सर्वोदय विद्यालय में पढ़ने जाते हैं। दिल्ली की उत्कृष्ट सरकारी स्कूल व्यवस्था के बारे में केजरीवाल के बड़े बड़े दावों के विपरीत इस स्कूल की ख़स्ता हालत है। 'शिक्षा सहायता मण्डल' में यहाँ के बच्चों को पढ़ाते हुए मैंने सरकारी स्कूल व्यवस्था की जर्जर स्थिति को क़रीब से देखा। यहाँ हालत यह है कि आठवीं या नौवीं क्लास में पढ़ने वाले छात्रों को तीसरी या चौथी क्लास के सवाल हल करने में परेशानी होती है। बारहवीं तक पहुँचते-पहुँचते ज़्यादातर बच्चों की पढ़ाई छूट जाती है। जो बच्चे बारहवीं के बाद पढ़ाई जारी रखते हैं वे भी मुख्यतः ओपन कोर्स में दाखिला लेकर मज़दूरी करना शुरू कर देते हैं। यहाँ हमें विरले ही कोई ऐसा नौजवान मिला है जो नियमित कोर्स कर रहा हो। लॉटरी के ज़रिए जिन बच्चों का प्राइवेट स्कूल में दाखिला हो भी जाता है उन्हें भी मज़दूर वर्गीय पृष्ठभूमि से होने के कारण स्कूल में भेदभाव झेलना पड़ता है। पूरे देश की तरह यहाँ भी लड़कियों की शिक्षा को अनदेखा किया जाता है और उनपर घर की रसोई से लेकर झाड़ू-पोंछा, कपड़े धोना और पानी भरने जैसे सभी कामों का बोझ लाद दिया जाता है। इसके अलावा, अच्छी पढ़ाई, रोज़गार, खेल कूद और अच्छी संस्कृति के अभाव में नौजवानों के बीच नशाखोरी और हिंसा आम बात बन गयी है। आये दिन यहाँ चोरी से लेकर मर्डर तक होते रहते हैं, जिसमें ज़्यादातर 18-20 साल के लड़के शामिल होते हैं। यहाँ कई एनजीओ भी काम करते हैं जो पूँजीपतियों से

(पेज 4 पर जारी)

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के ख़िलाफ़ छात्रों के आन्दोलन से हम मजदूरों को क्या सीखना चाहिए?

● अविनाश

इलाहाबाद में हज़ारों प्रतियोगी छात्रों का शानदार संघर्ष 5 दिनों तक लोक सेवा आयोग कार्यालय पर चला। उत्तर प्रदेश के विभिन्न ज़िलों समेत बिहार, दिल्ली, मध्यप्रदेश और देश के विभिन्न हिस्सों से आये लगभग 20 हज़ार छात्रों ने 5 दिनों तक लोक सेवा आयोग के सभी द्वारों पर कब्ज़ा कर लिया था। इस दौरान लोक सेवा आयोग के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को कार्यालय में ही रात गुजारनी पड़ी। प्रदर्शनकारी छात्र यह माँग कर रहे थे कि आयोग द्वारा आयोजित होने वाली परीक्षाएँ एक दिन एवं एक शिफ्ट में ही करायी जाय और परीक्षा परिणाम से नॉर्मलाइजेशन ख़त्म किया जाय। छात्रों का यह गुस्सा इसलिए फूटा

क्योंकि पिछले दिनों आयोग द्वारा एक अधिसूचना जारी किया गया कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा प्रस्तावित यूपीपीसीएस-2024 और इस साल फरवरी में पर्चा लीक होने की वजह से रद्द की गयी आरओ/एआरओ-2023 की परीक्षा को 2-2 दिनों के 2 या 2 से अधिक पालियों में कराया जायेगा और चूँकि परीक्षा एक से अधिक पालियों में होगी इसलिए परीक्षा परिणाम में नॉर्मलाइज़ेशन की प्रक्रिया अपनायी जायेगी। आयोग द्वारा यूपीपीसीएस-2024 प्री की परीक्षा 17 मार्च, 2024 को प्रस्तावित था, लेकिन इसे स्थगित कर दिया गया था। इसी तरह समीक्षा अधिकारी और सहायक समीक्षा अधिकारी के लिए परीक्षा 11 फ़रवरी को आयोजित की गयी थी जिसमें पर्चा लीक हो गया। जिसके बाद छात्रों के भारी विरोध और लोकसभा चुनाव के सिर पर होने की वजह से 6 महीने में दोबारा परीक्षा करवाने के आश्वाशन के साथ इस परीक्षा को भी रद्द कर दिया गया।

लेकिन 6 महीने के भीतर तो छोड़िए, जब 10 महीने बाद दोबारा परीक्षा आयोजित होने से पहले आयोग ने नॉर्मलाइजेशन का नया शिगूफ़ा छोड़ दिया है। इसके पहले यूपीपीसीएस समेत आयोग द्वारा करायी जाने वाली अधिकांश परीक्षाएँ एक दिन और एक शिफ़्ट में आयोजित होती थीं। ग़ौरतलब है कि आयोग ने इससे पहले जब भी परीक्षाओं में नॉर्मलाइज़ेशन की प्रक्रिया को अपनाया है तो लगभग हर बार भर्ती कोर्ट में सालों तक अटकी रहती है। सालों से बेरोज़गारी की मार झेल रहे नौजवानों को आयोग का यह फ़ैसला नागवार गुजरा और उत्तर प्रदेश के विभिन्न शैक्षिक शहरों समेत दिल्ली में इसके ख़िलाफ़ छात्रों ने नुक्कड़ सभाएँ और विरोध-प्रदर्शन आयोजित किया। लेकिन आयोग के कान में तेल डाल कर सोता रहा। फिर छात्र 11 नवम्बर को उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के कार्यालय पर इकठ्ठा हुए।

शुरू में आयोग ने छात्रों की माँग अड़ियल रुख अपनाया और पुलिस के दम पर आन्दोलन को कुचलने की हर सम्भव कोशिश की। लेकिन आयोग का यह हथकण्डा उल्टा पड़ गया और फ़ासीवादी योगी सरकार, आयोग तथा पुलिस प्रशासन के इस कायराना हरक़त से छात्रों-नौजवानों की जुझारू एकता और मज़बूत हुई। अन्ततः 4 दिन के संघर्ष के बाद आयोग को घुटने टेकने को मजबूर होना पड़ा और पीसीएस परीक्षा को पूर्व की भाँति एक दिन और एक शिफ़्ट में कराने की छात्रों की माँग मनानी पड़ी। लेकिन इसके साथ ही आरओ/एआरओ के सम्बन्ध में छात्रों की माँग आयोग ने समिति बनाकर विस्तृत रिपोर्ट पेश करने की बात कह कर टाल दिया। इस फैसले के बाद छात्र आरओ/एआरओ की माँग माने जाने तक आन्दोलन चलाने के पक्ष में थे। लेकिन अगले ही दिन आयोग द्वारा पीसीएस परीक्षा की तिथि घोषित कर दी गयी, जिसके बाद आन्दोलन में बिखराव की स्थिति बनने लगी। इसका फ़ायदा प्रशासन के दलालों ने और फ़ासीवादी संघ परिवार के अनुषंगी संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) जैसे संगठनों ने उठाया। शुरू से ही ये लोग आन्दोलन में प्रशासन की दलाली कर रहे थे और आन्दोलन का जुझारू तरीके से नेतृत्व कर रहे दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं समेत अन्य छात्रों की निशानदेही कर रहे थे। इनकी निशानदेही पर पुलिस प्रशासन सिविल ड्रेस में आकर 'दिशा छात्र संगठन' के दो कार्यकर्ताओं से संगठन के नेतृत्वकारी साथियों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित जानकारियाँ जुटाने में लगी रही। साथ ही अख़बारों के ज़रिये आन्दोलन में "अराजक तत्व", "बाहरी लोग घुस आये हैं" आदि का भ्रम फैला रहे थे। प्रशासन के दलाल और एबीवीपी, आयोग के इस फैसले का स्वागत कर छात्रों के बीच भ्रम फ़ैलाने की कोशिश करते रहे और इस प्रक्रिया में भाजपा और आयोग के छात्र विरोधी और जन विरोधी चेहरे को बेनक़ाब होने से बचाने में लगे रहे। दलाली कर रहे ये एजेण्ट छात्रों को पुलिस, एफ़आईआर आदि का डर दिखा कर आन्दोलन ख़त्म करने का दबाव बना रहे थे। अन्ततः पाँचवें दिन शाम को इस चेतावनी के साथ इस आन्दोलन को तात्कालिक तौर पर स्थगित करने का निर्णय लिया गया कि अगर समिति का फैसला छात्रों के पक्ष में नहीं आता है तो हम दोबारा आन्दोलन शुरू करेंगे।

हम मज़दूर साथियों के लिए भी इस आन्दोलन से कुछ ज़रूरी सबक निकलता है। पहला सबक यह कि जब भी पूँजीपति वर्ग या पूँजीवादी सरकार के ख़िलाफ़ कोई जुझारू आन्दोलन शुरू होता है तो शोषक वर्गों द्वारा सबसे पहले आन्दोलन में फूट डालने के हथकण्डे अपनाये जाते हैं। शोषक वर्ग के लिए इस काम में सबसे बड़े उनके सहयोगी बनते हैं हमारे बीच मौजूद भितरघाती और सत्ता के दलाल, जैसा कि छात्रों के इस आन्दोलन में भाजपा के बगलबच्चा संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् जैसे संगठन और जिला प्रशासन के दलालों ने किया। इसी तरह हमारे मज़दूर आन्दोलन में भारतीय मज़दूर संघ, एटक, इंटक, सीटू जैसे दलाल संगठन काम कर रहे है जो हमारे बीच में बहुत क्रान्तिकारी बनते हैं लेकिन जैसे ही हमारा कोई जुझारू आन्दोलन खड़ा होता है तत्काल ही ये संगठन पूँजीपतियों की दलाली करने लगते है और हमारे आन्दोलन को कमज़ोर बनाने की कोशिश करने लगते है। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपने आन्दोलन को ऐसे दलाल यूनियनों से मुक्त करें और पूँजीपति वर्ग से राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र क्रान्तिकारी मज़दूर यूनियन या संगठन कायम करें।

दूसरा और ज़रूरी सबक यह है कि बिना किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के कोई भी स्वत:स्फूर्त आन्दोलन या जनउभार कुछ सफलताओं और अराजकता के साथ अन्ततः ज़्यादा से ज़्यादा किसी समझौते या अक्सर असफलता पर ही ख़त्म होता है। पिछले एक दशक में ही ऐसे तमाम जनान्दोलन दुनिया भर में देखने में आये हैं, जो स्वत:स्फूर्त थे, अपनी ताक़त से शासक वर्ग को भयभीत कर रहे थे, लेकिन किसी स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य, कार्यक्रम और नेतृत्व के अभाव में अन्त में वे दिशाहीन हो गये, जनता अन्तत: थककर वापस लौटी और शासक वर्गों को अपने आपको और अपनी सत्ता को वापस सम्भाल लेने का अवसर मिल गया। ऐसा ही हमें श्रीलंका और बंगलादेश में अचानक से हुए जनउभार में देखने को मिला। यही हमें अरब जनउभार में भी देखने को मिला था। इसलिए जो एक नकारात्मक सबक हमें इन उदाहरणों से मिलता है, वह यह कि हमें अपना ऐसा स्वतन्त्र राजनीतिक नेतृत्व और संगठन विकसित करना चाहिए जो पूँजीपति वर्ग के सभी चुनावबाज़ दलों के असर से मुक्त हो, पूर्ण रूप से मज़दूर वर्ग की नुमाइन्दगी करता हो, उसकी राजनीति और विचारधारा मज़दूर वर्ग की राजनीति और विचारधारा हो। ऐसे क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठन के बिना जनसमुदाय कभी भी अपने जनान्दोलनों के उद्देश्यों की पूर्ति तक नहीं पहुँच सकते।

इस छात्र आन्दोलन में दिशा छात्र संगठन के साथी क्रान्तिकारी नेतृत्व देने की कोशिश कर रहे थे लेकिन तमाम आत्मगत और वस्तुगत परिस्थितियों की वजह से एक क्रान्तिकारी नेतृत्व पूर्णतः स्थापित नहीं हो पाया जिसकी वजह से इस आन्दोलन को आंशिक सफलता ही मिली। मज़दूर आन्दोलन की सफलता भी बिना किसी मज़बूत क्रान्तिकारी नेतृत्व के सम्भव नहीं है। इसलिए हम मजदूरों को अपनी एक क्रन्तिकारी यूनियन बनाने की दिशा में गम्भीरता से सोचना होगा और साथ ही यूनियन संघर्षों की चौहद्दियों से आगे बढ़कर समूचे समाज के क्रान्तिकारी रूपान्तरण के लिए एक क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ना होगा। मज़दूर वर्ग ही यह कर सकता है और उसे करना ही होगा।

कुसुमपुर पहाड़ी में मेहनतकशों-नौजवानों की जीवन स्थिति पर एक छात्र की चिट्ठी

(पेज 3 से आगे)

फण्डिंग लेकर इलाक़े में बच्चों को पढ़ाने, दवाई बाँटने, कम्प्यूटर और सिलाई सिखाने जैसे कुछ सुधारपरक काम करते हैं और इस व्यवस्था और सरकारों की नाकामियों को छिपाने का काम करते हैं।

मेहनतकशों और नौजवानों की जो जीवन स्थिति कुसुमपुर पहाड़ी में है, वही हाल देश के लगभग सभी मज़दूर रिहायशी इलाक़ों में है। विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हम छात्रों को यह सोचना होगा कि सुई से लेकर जहाज़ तक सब कुछ पैदा करने वाला मज़दूर वर्ग क्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी तरह शोषण की चक्की में पिसता रहेगा? कुसुमपुर में रहने वाले मेहनतकशों की अगली पीढ़ियाँ भी क्या इन्हीं नारकीय और अमानवीय परिस्थितियों में अपनी ज़िन्दगी काटेंगी? अगर इतिहास में चीज़ें बदली हैं तो क्या आगे भी मज़दूर वर्ग के हालात बदलेंगे? अगर बदलेंगे तो कैसे बदलेंगे? कौन बदलेगा उन्हें?

– सागर, जेएनयू, दिल्ली

महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में भाजपा गठबन्धन की भारी जीत!
मज़दूर वर्ग की चुनौतियाँ बढ़ेंगी, ज़मीनी संघर्षों की तेज़ करनी होगी तैयारी!
मज़दूरों-मेहनतकशों की पार्टी आरडब्ल्यूपीआई को जड़ें करनी होंगी मज़बूत!

● **अविनाश**

2024 के महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में बीजेपी-महायुति को 80 फ़ीसदी सीटों के साथ प्रचण्ड बहुमत मिला है, और कांग्रेस, एनसीपी (शरद पवार), शिवसेना (उद्धव ठाकरे) तथा संशोधनवादी वाम व अन्य पार्टियों से बनी महाविकास अघाड़ी को करारी हार का सामना करना पड़ा है। फ़ासीवादी भाजपा जैसी ताक़त के नेतृत्व में बने गठबन्धन का सत्ता में आना इस बात की गारण्टी देता है कि निकट भविष्य में बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार नयी ऊँचाइयों पर पहुँचेंगे। ऐसे में हम मज़दूर-मेहनतकश वर्ग को किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि हमारे पास अपने वास्तविक अधिकारों के लिए संघर्ष करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं हैं।

उदारपन्थी विचारधारा के लोग महाविकास अघाड़ी का नाम जपते रहे हैं और फ़ासीवाद को महज़ चुनावी तिकड़मों से हराने की जुगाड़ में लगे हुए हैं। ऐसे लोगों के लिए चुनावी नतीजे सदमे जैसे हैं। यह इसलिए कि इनके पास फ़ासीवाद की अत्यन्त ग़ैर-वैज्ञानिक समझदारी मौजूद है।

पहले महायुति की जीत के कारण को समझते हैं। महायुति की जीत का सबसे बड़ा पहलू फ़ासीवादी भाजपा के पास पहले से एक संगठित प्रतिक्रियावादी संगठन व जनाधार का मौजूद होना है। फ़ासीवाद जो कि एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है, जिसका मुख्य आधार निम्न-मध्यम वर्ग, व्यापारी वर्ग जैसे बड़े सामाजिक समूहों के बीच मौजूद है। मुसलमानों और सामाजिक आन्दोलनों को झूठे दुश्मन के रूप में चित्रित करके, मन्दिर-मस्जिद, गोमाता, लव-लैण्ड-वोट जिहाद, वक्फ़ बोर्ड आदि जैसे कई फ़र्ज़ी मुद्दे उठाकर समाज में भय का माहौल पैदा करके इनका जनाधार बनाया गया है। ऐसे में जब रोज़गार-महँगाई-मन्दी के चलते जनता के बीच भारी असन्तोष मौजूद है, तब भाजपा ने साम-दाम-दण्ड-भेद का इस्तेमाल कर मीडिया और आरएसएस कार्यकर्ताओं की मदद से व पूँजीपतियों द्वारा ख़र्च किये गये हज़ारों करोड़ रुपये का इस्तेमाल करके व इसके अलावा चुनाव में कटेंगे तो बँटेंगे, ओबीसी-मराठा मुद्दे पर भी ध्रुवीकरण करके, चुनाव आयोग की मदद से मतदाता सूची में बदलाव, सम्भावित तौर पर ईवीएम से चुनावों में हेरफेर करके और इसके साथ ही "लाडली बहन" जैसे लालच दिखाने वाली योजनाओं द्वारा एक बार फिर सत्ता तक पहुँचने में भाजपा-महायुति क़ामयाब रही है। इन सब कारणों में संघ परिवार के समर्पित हिन्दुत्व वोट बैंक और भाजपा के वास्तविक जनाधार की भूमिका को निश्चित रूप से नहीं भुलाया जाना चाहिए।

फ़ासीवाद की मज़दूर-विरोधी राजनीति अब एक स्थायी परिघटना बन चुकी है। फ़ासीवाद का कारण मुनाफ़े की दर में गिरावट व देश-दुनिया में आर्थिक संकट की मौजूदगी है। इसी आर्थिक संकट के कारण बढ़ती महँगाई-भ्रष्टाचार-बेरोज़गारी के ख़िलाफ़ जनता के असन्तोष को नियंत्रित करने, जनता को बुरी तरह दबाने के लिए भाजपा आज भी तमाम मालिकों, पूँजीपतियों और बिल्डरों की पसन्दीदा पार्टी बनी हुई है। आज महाविकास अघाड़ी जैसे गठबन्धन धार्मिक-साम्प्रदायिक विचारों के ख़िलाफ़ लड़ने में असमर्थ हैं! साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 2014 में भाजपा की सरकार एनसीपी के समर्थन से बनी थी, शिवसेना अब भी हिन्दुत्व वाली बातें करती है और एनसीपी-कांग्रेस इसपर कुछ नहीं कहती है। साथ ही हाल ही में सामने आये इस तथ्य को भी नहीं भूलना चाहिए कि एनसीपी, भाजपा और अदानी की साथ में मीटिंग हुई थी। इन सभी दलों की असली राजनीति पूँजी की सेवा है और असली संघर्ष केवल पूँजीपतियों का प्रतिनिधित्व करना और सत्ता की लूट का बड़ा हिस्सा हासिल करना है।

आरडब्ल्यूपीआई के प्रदर्शन का मूल्यांकन

भारत की क्रान्तिकारी पार्टी (RWPI) महाराष्ट्र में दो निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ी। पर्वती निर्वाचन क्षेत्र से पार्टी की उम्मीदवार कॉमरेड टी. ललिता थीं, जिन्हें 280 वोट मिले। वहीं मानखुर्द-शिवाजीनगर से उम्मीदवार कॉमरेड डॉ. पूजा थीं, जिन्हें 380 वोट मिले। आरडब्ल्यूपीआई को मिले इस समर्थन का विश्लेषण भी ज़रूरी है।

सबसे पहले, आरडब्ल्यूपीआई का राजनीतिक संगठन अभी कमज़ोर है और वैचारिक प्रभाव भी उतना व्यापक नहीं है। चुनावी मतों को प्राथमिक आधार बनाकर किसी भी क्रान्तिकारी राजनीति का मूल्यांकन ग़लत तरीक़ा होगा। किसी भी क्रान्तिकारी पार्टी के प्रचार तंत्र का विस्तार, जनता के अलग-अलग हिस्सों में उसके कार्यकर्ताओं की क़तारों का विस्तार, जनान्दोलनों को नेतृत्व दे पाने की उसकी क्षमता, विभिन्न तरीक़ों के संस्थागत कार्यों का विस्तार; इन पैमानों के अभाव में सिर्फ़ चुनावी समर्थन को आधार बनाकर आँकना ग़लत तरीक़ा होगा। फिलहाल आरडब्ल्यूपीआई का उक्त पैमानों पर राजनीतिक संगठन काफी कमज़ोर है और उसे मज़बूत बनाना ही आरडब्ल्यूपीआई के लिए मुख्य कार्यभार बनता है।

आगे हम यह भी देख सकते हैं कि उदारवादी विचारों के प्रभाव के कारण फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए जनता के एक बड़े हिस्से द्वारा पूँजीवादी पार्टियों पर अभी भी राजनीतिक निर्भरता बनी हुई है और फ़ासीवादी विचारों के ख़िलाफ़ लड़ाई अभी तक ज़ोर नहीं पकड़ पायी है। समाज में धार्मिक, जाति-आधारित विचारधाराओं और यहाँ तक कि मज़दूर वर्ग पर पूँजीवादी विचारों का वर्चस्व है। इसके ख़िलाफ़ लड़ना और क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की सोच को स्थापित करने का काम बहुत बड़ा है।

मानख़ुर्द शिवाजीनगर में यह देखा गया कि जनता के सभी वर्गों से हमारे अभियान को अच्छी प्रतिक्रिया और स्वीकृति मिली। इस मुस्लिम-बहुल निर्वाचन क्षेत्र में हिन्दुत्व-फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ और कट्टरपन्थी विचारों के प्रभाव में एक मुस्लिम उम्मीदवार को संरक्षक के रूप में देखने का विचार प्रभावी रहा। यही वजह है कि सबसे ज़्यादा वोट पाने वाले 4 में से 3 उम्मीदवार मुस्लिम थे। इस धार्मिक ध्रुवीकरण और कट्टरपन्थी विचारों के प्रभाव का फ़ायदा उठाकर मुसलमानों के बीच से आये समाजवादी पार्टी के अबू आज़मी जैसे पूँजीपति लगातार इस क्षेत्र से चुने जाते रहे हैं। हालाँकि, इस समय जनता के एक बड़े वर्ग में गन्दगी, प्रदूषण, सीवर, पानी के मुद्दे, स्कूल और क्लीनिक जैसे विकास कार्यों की कमी के मुद्दों पर सपा विधायक अबू आज़मी के ख़िलाफ़ भी लहर मौजूद थी। ऐसे में अबू आज़मी धन के इस्तेमाल, डराने-धमकाने, डर फैलाने और वोट बँटने के कारण दोबारा चुनकर आये। इसके विरोध में दूसरे नम्बर पर रही एम.आई.एम की ताक़त आने वाले समय में कट्टरवाद के प्रभाव को बढ़ाने का ही काम करेगी और मज़दूर वर्ग की राजनीति के लिए एक बड़ी चुनौती होगी। आरडब्ल्यूपीआई के प्रचार से सहमति के बावजूद, बड़ी संख्या में मतदाताओं ने वोट विभाजन से बचने के लिए "जीतने योग्य" विकल्प को चुना। यह मज़दूर वर्ग की विचारधारा के प्रभाव को और गहरा करने की चुनौती को रेखांकित करता है।

पुणे के पर्वती निर्वाचन क्षेत्र में भाजपा की प्रचार मशीनरी, धन और बाहुबल के सामने महाविकास अघाडी की उम्मीदवार भी कहीं टिक नहीं सकी। महाविकास अघाडी के प्रचार में किसी भी तरह की धार देखने को नहीं मिली। आज महाराष्ट्र में राजनीति की हालत देखकर मज़दूर वर्ग में व्यापक मोहभंग हुआ है। इस इलाक़े में आरडब्ल्यूपीआई की अपेक्षाकृत कमज़ोर संगठनात्मक शक्ति इस मोहभंग को दूर करने के लिए अपर्याप्त साबित हुई है। देश में चुनाव एक बाज़ार का तमाशा है और अब यह बाज़ार बहुत बड़ा हो गया है, इसीलिए मज़दूर वर्ग प्रचार से लेकर वोट तक हर काम में अपनी श्रम शक्ति बेचने में हिस्सेदारी करता है। RWPI द्वारा लड़े गये लोकप्रिय आन्दोलनों से परिचित मतदाताओं ने हमें वोट दिया और वहीं दूसरी तरफ़ इनका एक हिस्सा चुनावी बाज़ार के प्रभाव सें अपने आप को दूर नही रख सका। प्राप्त नतीजे इस आधार का विस्तार करने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

किन्तु चुनाव अभियान के दौरान लगभग 8,000 लोगों द्वारा दिये गये वित्तीय सहयोग ने निश्चित रूप से RWPI की भूमिका और कार्यक्रम के लिए समर्थन दिखाया। RWPI की भागीदारी यह रेखांकित करने के लिए थी कि लाल झण्डा और मज़दूर वर्ग की स्वतंत्र क्रान्तिकारी शक्ति चुनावी क्षेत्र में भी मौजूद थी। अब जनता के बीच राजनीतिक वर्ग चेतना पैदा करने, निरन्तर जन संघर्ष और क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार के माध्यम से हमारे सामाजिक आधार को व्यापक और गहरा करने की चुनौती हमारे सामने है।

पूँजीवादी चुनावों के खेल में आमतौर पर वही जीतता है जिसके पास बड़ी कम्पनियों, ठेकेदारों, अमीर दुकानदारों, पूँजीवादी कुलकों और विभिन्न प्रकार के दलालों का पैसा और ताक़त होती है। वही ताक़तें चुनाव में भारी मात्रा में पैसा, शराब, ईवीएम घोटाला, वोट ख़रीदने जैसे बेशर्म खेल खेल सकती हैं। जबकि सीमित शक्ति और बहुत कम लागत पर किये गये समाजवादी कार्यक्रम के अभियान को लोकप्रिय समर्थन मिलने के बावजूद, RWPI को लम्बा रास्ता तय करना है। आने वाले समय में अपने विचारों और कार्यक्रम को अधिक से अधिक जन तक पहुँचाने की ज़रूरत है, जनता के रोज़मर्रा के मुद्दों और समस्याओं पर उन्हें जागृत और संगठित करने तथा जनवादी अधिकारों के लिए लड़ने की ज़रूरत है। अगले कुछ वर्षों में रोज़गार, वेतन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, स्वच्छता, आवास सहित जीवन के बुनियादी मुद्दों पर संघर्ष और कड़ी मेहनत के माध्यम से निरन्तर वैचारिक प्रचार-प्रसार करते हुए ही पार्टी और मज़दूर वर्ग की राजनीति को मज़बूत किया जा सकता है।

चुनाव आयेंगे और जायेंगे, लेकिन क्रान्तिकारी परिवर्तन का रास्ता मुख्यत: जन-संघर्षों का रास्ता है। मज़दूर वर्ग की पार्टी के सामने मुख्य कार्य इसी वास्तविक लड़ाई के लिए तैयार होना है।

कार्टून – राजेन्द्र धोड़पकर

चुनावों में भाजपा के फ़र्ज़ी मुद्दों से सावधान!

● भारत

अभी महाराष्ट्र और झारखण्ड में चुनाव चल रहे हैं। इस समय इन विधानसभा चुनावों में (ख़ासतौर पर झारखण्ड में) "घुसपैठियों" पर ख़ूब बयानबाज़ी की जा रही है। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि इस मुद्दे को भाजपा द्वारा ही सबसे अधिक उछाला जा रहा है। भाजपा ऐसा माहौल बना रही है कि झारखण्ड में "घुसपैठियों" के अलावा और कोई मुद्दा ही नहीं है। पिछले कुछ महीनों से बीजेपी के नेता यह दावा कर रहे हैं कि झारखण्ड के संथाल परगना में बड़ी संख्या में बंगलादेशी "घुसपैठिये" आकर बस गये हैं। भाजपा आरोप लगा रही है कि वे आदिवासियों की ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर रहे हैं, आदिवासी महिलाओं से शादी कर रहे हैं, और इस कारण आदिवासियों की जनसंख्या घट रही है। भाजपा के असम के मुख्यमन्त्री खुलकर साम्प्रदायिक बयान दे रहे हैं कि "घुसपैठिये रोटी-बेटी लूट लेंगे।" आइये सबसे पहले तो भाजपा द्वारा फैलाये गये इस "घुसपैठ" के दावों की हक़ीक़त के बारे में जान लेते हैं।

इस मसले को लेकर 'झारखण्ड जनाधिकार महासभा' और 'लोकतन्त्र बचाओ अभियान' ने क्षेत्रीय तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए फैक्ट फाइंडिंग की, यानी तथ्यों की जाँच-पड़ताल की। द *मूक नायक* की रिपोर्ट के अनुसार इस टीम ने स्थानीय लोगों, पीड़ितों, आरोपियों, ग्रामीणों, ग्राम प्रधानों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से विस्तृत बातचीत की। साथ ही 1901 से अब तक की जनगणना के आँकड़े, जनगणना रिपोर्ट, गज़ेटियर और क्षेत्रीय आबादी से सम्बन्धित शोध पत्रों का अध्ययन किया गया। तथ्यों को रांची के प्रेस क्लब में मीडिया के समक्ष भी साझा किया गया। टीम ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि ज़मीनी हक़ीक़त भाजपा के साम्प्रदायिक दावों से कोसों दूर है। जाँच-प्रड़ताल टीम ने कई गाँवों का दौरा किया और सभी गाँवों के ग्रामीणों, शहर के लोगों, छात्रों, जन प्रतिनिधियों आदि से पूछा कि किसी को बंगलादेशी "घुसपैठियों" के बारे में जानकारी है या नहीं। सभी ने कहा कि उन्हें ऐसी कोई जानकारी नहीं है। जब पूछा गया कि "घुसपैठियों" के बारे में उन्होंने कहाँ सुना है, तो सभी ने कहा कि सोशल मीडिया पर सुना है, लेकिन कभी देखा नहीं है। चाहे ज़मीन लेकर बसने की बात हो, आदिवासी महिलाओं से शादी की बात हो या हाल की हिंसा की बात हो, इनमें बंगलादेशी "घुसपैठियों" का कोई सवाल ही नहीं है। फैक्ट फाइंडिंग के दौरान यह पाया गया कि भाजपा द्वारा उठाये गये मुद्दों में बंगलादेशी "घुसपैठियों" का कोई सबूत ही नहीं मिला है। स्थानीय लोग और क्षेत्रीय अधिकारी भी इन दावों को ख़ारिज करते हैं।

भाजपा लगातार दावा कर रही है कि बंगलादेशी "घुसपैठियों" के चलते पिछले 24 वर्षों में आदिवासियों की जनसंख्या 10-16% कम हुई है। इसके उलट सरकारी दस्तावेज़ों तक में बंगलादेशी "घुसपैठियों" के बसने का कोई प्रमाण नहीं है। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार संथाल परगना क्षेत्र में 1951 में 46.8% आदिवासी, 9.44% मुसलमान और 43.5% हिन्दू थे। 1991 में आदिवासियों की जनसंख्या 31.89% थी और मुसलमानों की 18.25% थी। 2011 की जनगणना के अनुसार क्षेत्र में 28.11% आदिवासी, 22.73% मुसलमान और 49% हिन्दू थे। 1951 से 2011 के बीच हिन्दुओं की आबादी 24 लाख बढ़ी है और मुसलमानों की 13.6 लाख और आदिवासियों की 8.7 लाख आबादी बढ़ी है। वहीं आदिवासियों की जनसंख्या में गिरावट का मुख्य कारण अपर्याप्त पोषण, स्वास्थ्य व्यवस्था और आर्थिक तंगी हैं। बंगलादेशी "घुसपैठियों" की मौजूदगी इन कारणों में कहीं भी शामिल नहीं है।

आख़िर भाजपा ऐसे फ़र्ज़ी मुद्दे ही क्यों उठाती है!

ज़रा सोचिए, ऐसा क्यों होता है कि जैसे–जैसे चुनाव नज़दीक आता जाता है और विशेषकर भाजपा सरकार को हार का ख़तरा सताने लगता है, वैसे ही देश भर में दंगों का माहौल बनना क्यों शुरू हो जाता है? क्यों चुनाव के समय ही मन्दिर और मस्जिद के नाम पर लड़ाइयाँ शुरू हो जाती हैं? क्यों ख़बरों में ऐसा आना शुरू हो जाता है कि पाकिस्तान या चीन देश की सुरक्षा के लिए ख़तरा हैं और क्यों फर्जी युद्धोन्माद भड़काना शुरू कर दिया जाता है? और आख़िर क्यों चुनाव आते ही अचानक "घुसपैठ" तेज़ हो जाते हैं? इन सवालों का जवाब बिल्कुल साफ़ है! चुनाव के समय भाजपा जैसी फ़ासीवादी पार्टी रोज़गार, महँगाई, भ्रष्टाचार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसे ज़रूरी मुद्दों पर बात कर ही नहीं सकती, क्योंकि न तो इन्होंने कभी इस पर काम किया है और न ही इन मुद्दों पर काम करना इनका मक़सद रहा है। यह तो पूरे तन-मन-धन से अपने मालिकों के वर्ग यानी अम्बानी-अडानी, टाटा-बिड़ला आदि जैसे पूँजीपतियों की सेवा में लगे रहते हैं। अब चूँकि इनके पास असल मुद्दे होते ही नहीं जिनपर ये वोट माँग सकें, इसलिए यह आम जनता के सामने नक़ली मुद्दे खड़े करते हैं और नक़ली दुश्मन पेश करते हैं, जिसके सर पर अपनी और समूची पूँजीवादी व्यवस्था की सारी नाकामयाबियों का ठीकरा फोड़ सकें। साम्प्रदायिक तनाव भड़का कर जनता का ध्यान असल मुद्दों से हटा दिया जाता है, मुसलमानों के रूप में बाकी बहुसंख्यक समुदाय के सामने एक नक़ली दुश्मन पेश किया जाता है और यह लफ्फ़ाज़ी की जाती है कि सारी समस्याओं की जड़ मुसलमान हैं! जबकि सच्चाई यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण, ग़रीबी, बेरोज़गारी और महँगाई का शिकार आम मेहनतकश जनता है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या कोई और। लेकिन यह जनता इन असल समस्याओं पर एकजुट न हो सके, इसके लिए फ़ासीवादी ताक़तें आम मेहनतकश जनता को धर्म के मसले पर बाँट देती है और आपस में ही लड़ा देती है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक फ़ासीवादी पार्टी होने के नाते भी भाजपा के तौर-तरीके अन्य पूँजीवादी पार्टियों से अलग हैं। उसका मुख्य काम ही है साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल कर असुरक्षा व निश्चितता से बिलबिलाये टुटपुँजिया वर्गों की अन्धी प्रतिक्रिया को मुसलमानों, ईसाइयों या दलितों के रूप में एक नक़ली दुश्मन दे दिया जाये और फिर दंगे-फ़साद के बूते सत्ता हासिल की जाये।

आज महँगाई लगातार बढ़ती जा रही है। पक्का रोज़गार तो दूर की बात है, आज लोगों के पास रोज़गार का ही भयंकर संकट है। हर साल 2 करोड़ रोज़गार का वायदा कर सत्ता में आयी भाजपा सरकार ने पिछले 10 सालों में लगभग केवल साढ़े सात लाख लोगों को ही रोज़गार दिया, जबकि इससे कहीं ज़्यादा लोगों से रोज़गार इस सरकार ने इसी दौर में छीन लिया है। शिक्षा को लगातार महँगा तो किया ही जा रहा है, नयी शिक्षा नीति जैसी नीतियों की मदद से शिक्षा का साम्प्रदायीकरण भी किया जा रहा है और लगातार मेहनतकश वर्ग से आने वाले नौजवानों को इससे दूर किया जा रहा है। चार लेबर कोड को लागू करने की तैयारी चल रही है, जिसके ज़रिये मज़दूरों के शोषण को और बढ़ाने की क़ानूनी छूट पूँजीपतियों को मिल जायेगी।

कुल मिलाकर हर असली और ज़रूरी मुद्दे पर भाजपा सरकार नंगी हो चुकी है। इसलिए ही इन्हें ग़ैर-ज़रूरी और नक़ली मुद्दों की ज़रूरत होती है, जिसपर जनता को बाँट सकें। वहीं बिके हुए गोदी मीडिया की मदद से यह काम उनके लिए और भी आसान हो गया है। साथ में इनके आईटी-सेल सोशल मीडिया के ज़रिये भी इसी काम में लगे हुए हैं। फ़ेक न्यूज़ फ़ैलाकर यह पहले से ही लोगों के अन्दर ज़हर भरने का काम कर रहे हैं, पर चुनाव के आते ही बंगलादेश और रोहिंग्या मुसलमानों के "घुसपैठ" और "हमले" का डर लोगों के दिमाग़ में डालना शुरू कर देते हैं, जिसका सच्चाई से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं होता।

हमें भाजपा व संघ परिवार के असली फ़ासीवादी एजेण्डे को पहचानना होगा। हमें समझना होगा कि हमारे असली मुद्दे रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास के हैं। यही वे मुद्दे हैं जो सीधे हमारी ज़िन्दगी से जुड़ते हैं। हमें पक्के रोज़गार की, समान व निःशुल्क स्वास्थ्य व शिक्षा की, अप्रत्यक्ष कर को समाप्त करके व पूँजीपतियों पर प्रगतिशील प्रत्यक्ष कर लगाकर महँगाई पर रोक लगाने की, ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँगों के लिए लड़ना होगा। यही वे अधिकार हैं, जिसके लिए लड़कर हम एक नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के संघर्ष को आगे बढ़ा सकते हैं।

अयोध्या, ज्ञानवापी के बाद अब सम्भल और अजमेर के ज़रिए साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ाने की तैयारी में जुटा फ़ासीवादी गिरोह!!

● प्रियम्वदा

अयोध्या और काशी के ज्ञानवापी के बाद अब उत्तर प्रदेश के सम्भल में मौजूद मुगलकालीन शाही जामा मस्जिद के सर्वेक्षण का आदेश बीते 19 नवम्बर को एक स्थानीय कोर्ट द्वारा दिया गया। देश की सेवा में तल्लीन कुछ "हिन्दू धर्म रक्षकों" ने यह दावा किया था कि यह मस्जिद विष्णु के अन्तिम अवतार कल्कि को समर्पित एक प्राचीन मन्दिर का स्थल था और बाबर ने इस ध्वस्त कर यहाँ मन्दिर बनाया था इसलिए वहाँ जाँच की अनुमति कोर्ट को देनी चाहिए। कोर्ट ने बिना देरी किये सर्वेक्षण का फ़ैसला दे दिया और फ़ैसला आने के कुछ घण्टों के भीतर ही 19 नवम्बर को सर्वेक्षण का काम शुरू कर दिया गया।

बिना किसी पूर्व सूचना के मस्जिद की जाँच को लेकर वहाँ के स्थानीय लोगों ने आपत्ति जतायी मगर उन्हें अनसुना करते हुए जाँच-पड़ताल और "मन्दिर ढूँढने" का काम 24 नवम्बर को भी जारी रहा और मस्जिद की खुदाई की तैयारियाँ शुरू कर दी गयीं जिसके बाद लोगों ने इस कार्रवाई का विरोध करना शुरू किया।

उत्तर प्रदेश पुलिस ने लोगों के इस विरोध को कुचलने के लिए सीधी फ़ायरिंग की। लाठीचार्ज, आँसू गैस से लेकर पैलेट गन तक का इस्तेमाल अपने ही देश के निहत्थे आम लोगों पर करने में पुलिस प्रशासन को खुली छूट हालिया कुछ वर्षों में मिल गयी है। जामिया, अलीगढ़ से लेकर दिल्ली में संघ द्वारा प्रायोजित दंगे में पुलिस का रवैया इसका उदाहरण है। सम्भल में पुलिस द्वारा शान्ति बहाल करने के नाम पर किये गये हमले में 5 से अधिक लोगों की जान जा चुकी है और 31 से अधिक लोगों को दंगा भड़काने के आरोप में गिरफ़्तार किया गया है। अब योगी सरकार उनके नामों के पोस्टर लगाने और क़ानून को ताक पर रखकर उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित करने की तैयारी कर रही है।

सम्भल की घटना के बाद से मीडिया दिन-रात इसे लेकर घोर साम्प्रदायिक प्रचार में जुट गया है। अडाणी का भ्रष्टाचार, काने-पीने की चीज़ों में भयंकर महँगाई, बेरोज़गारी – सब भुला दिये गये हैं। और अब अजमेर की सैकड़ों साल पुरानी दरगाह को लेकर भी वही खेल शुरू कर दिया गया है।

मालूम हो कि सम्भल की यह मस्जिद 'ऐतिहासिक स्मारक' के रूप में दर्ज है और मौजूद ऐतिहासिक तथ्य इस बात को पुष्ट करते हैं कि यह मुगल बादशाह बाबर के काल में बनायी गयी थी। हालाँकि, देश में फ़ासीवादी ताक़तों के सत्तासीन होने के बाद से लगातार मस्जिदों के नीचे मन्दिरों के दबे होने के दावों को अलग-अलग तरीक़े से हवा दी जा रही है।

1992 में बाबरी मस्जिद ढहाने के बाद भाजपा और संघ परिवार ने जो नारा दिया था कि "अभी तो बस ये झाँकी है, मथुरा-काशी बाक़ी है" उसे अमली जामा पहनाने में पूरी तैयारी के साथ लगे हैं। अन्य धार्मिक स्थलों के नीचे मन्दिरों को ढूँढ़ने की क़वायद ने मोदी राज में जो तेज़ी पकड़ी है वह किसी से छुपी हुई नहीं है और ऐसे तमाम मसलों में न्यायपालिका ने फ़ासीवादी ताक़तों की चाकरी में अपनी प्रतिबद्धता को खुलेआम उजागर किया है। पिछले कई केस में हाई कोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले ने "बहुसंख्या की आस्था" के नाम पर संघ परिवार और भाजपा की धार्मिक उन्माद की राजनीति को क़ानूनी रूप देने का काम किया है। बावजूद इसके हमारे मुल्क़ के समझदार लोग अभी भी न्यायपालिका से "निष्पक्ष फ़ैसले" की उम्मीद में टकटकी लगाये अपने घरों में इन्तज़ार कर रहे हैं!

जिस पूर्व न्यायाधीश चन्द्रचूड़ से इस देश के लिबरलों को काफ़ी उम्मीद दिखायी दे रही थी, उसी ने मई 2022 में अपने एक फ़ैसले में संघ परिवार और उनके गुण्डों को देश में ध्रुवीकरण करने के लिए खुला हाथ दिया।

ज्ञानवापी मसले की सुनवाई करते हुए पूजास्थल क़ानून, विशेष प्रावधान, 1991 को बदलकर इस बात की छूट दे दी कि अब किसी भी धार्मिक स्थल (मुख्यतः मस्जिदों) के सर्वेक्षण और जाँच-पड़ताल के लिए आसानी से इजाज़त मिल सकती है। जबकि इस क़ानून में स्पष्ट कहा गया था कि 15 अगस्त, 1947 को धार्मिक स्थलों की जो स्थिति थी, उससे छेड़छाड़ नहीं की जायेगी। 2022 के सुप्रीम कोर्ट के इस

(पेज 7 पर जारी)

देशभर में साम्प्रदायिक उन्माद और नफ़रत का माहौल बनाने में जुटे संघ और भाजपा

(पेज 1 से आगे)

नाम पर पाँच आरोपियों को गिरफ़्तार किया। दो आरोपियों की एनकाउण्टर की ख़बर आयी जिसमें दोनों ही मुस्लिम थे। गोदी मीडिया ने भी मसले पर खूब ज़ोर-शोर से उछाला। यहाँ भाजपा के ही एक नेता ने दंगा भड़काने की साज़िश का भण्डाफोड़ किया जिसका वीडियो भी वायरल हुआ।

• 30 अगस्त को शिमला के मल्याणा में एक 37 वर्षीय शख़्स विक्रम सिंह के साथ एक मुस्लिम युवक और उसके दोस्तों ने मारपीट की। इस झड़प में विक्रम सिंह बुरी तरह ज़ख्मी हो गया था। पुलिस ने इस केस में छह आरोपियों को गिरफ़्तार किया था। आरोप है कि आरोपी हमले के बाद मस्जिद में आकर छुप गये थे। उसके बाद फ़ासीवादी संगठनों ने संजौली में प्रदर्शन किया और मस्जिद को अवैध बताते हुए गिराने की माँग की। मारपीट की घटना के अगले ही दिन उन्मादी भीड़ इस मस्जिद के सामने पहुँची और हनुमान चालीसा का पाठ किया। ज़ाहिर है, एक अकेली घटना को आधार बनाकर एक समूचे समुदाय को निशाना बनाया जा रहा था। भाजपा व संघ परिवार इस प्रकार की कार्रवाई लगातार ही करते हैं। अगर ऐसी घटना में आरोपी मुसलमान नहीं होते, तो उन्हें एक अकेली अलग-थलग घटना बताकर रफ़ा-दफ़ा किया जाता है, लेकिन अगर आरोपी कोई मुसलमान व्यक्ति है, तो उसे समूची मुसलमान आबादी व उनके अधिकारों पर हमले का आधार बना दिया जाता है।

• 11 सितम्बर के दिन संजौली (हिमाचल प्रदेश) में संघियों द्वारा बड़े प्रदर्शन को अंजाम दिया गया। हज़ारों की तादाद में जुटी उग्र उन्मादी भीड़ ने सड़कों पर बैरिकेडिंग तोड़ी और कई घण्टों तक नारेबाज़ी की। प्रदर्शन के दौरान शहर में तनाव का माहौल बना। उपद्रवियों और पुलिस में झड़प भी हुई जिसमें कई लोग भी घायल हुए।

• 13 सितम्बर 2024 को हिमाचल प्रदेश के मण्डी शहर में जेल रोड में स्थित एक मस्जिद में कथित अवैध निर्माण को लेकर एक विरोध प्रदर्शन हुआ। संघी ऐसे मौक़े पर हर विवाद को साम्प्रदायिक रंग देने की तिकड़म में लगे रहते हैं। कांगड़ा ज़िले में नगरोटा बगवाँ के गाँधी मैदान के समीप स्थित एक शिवालय के शिवलिंग को तोड़ दिया गया। इस घटना पर भी संघियों ने क्षेत्र में तनाव का पूरा माहौल बनाया। इलाक़े से मुसलमानों के घरों और दुकानों को खाली करवाने की माँग की। बाद में पता चला कि शिवलिंग तोड़ने की घटना को एक हिन्दू महिला ने अंजाम दिया था, जिसकी मानसिक दशा ठीक नहीं थी।

• अक्टूबर 2024, उत्तर प्रदेश पीलीभीत जिले में एक मुस्लिम युवक की बजरंग दल के ज़िला अध्यक्ष सहित एक दर्जन से अधिक लोगों ने जमकर पिटाई की। पीड़ित युवक की पहचान रामपुर तालुके महाराजपुर निवासी चंगेज़ ख़ान के रूप में हुई है। इस घटना का वीडियो सोशल मीडिया पर तेजी से वायरल हुआ, जिसमें आरोपी युवक को लाठी डंडों से पीटते हुए दिखायी दे रहे थे। आरोपियों ने युवक के गुप्तांगों पर भी डंडे से हमला किया। लेकिन पुलिस ने अभी तक आरोपियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की है।

• कुछ दिन पहले महाराष्ट्र के इगतपुरी के पास धुले एक्सप्रेस में एक घटना घटी थी। महाराष्ट्र में चलती ट्रेन में एक बुजुर्ग से मारपीट की घटना सामने की गयी। संघियों ने बुजुर्ग पर बीफ़ लेकर चलने का आरोप लगाते हुए उन्हें थप्पड़ मारे और गालियाँ भी दी। इसका वीडियो सामने आने के बाद ठाणे प्रशासन ने पाँच से ज़्यादा यात्रियों के ख़िलाफ़ एफआईआर दर्ज की है। लेकिन ऐसी रपटों का क्या होता है, हम सभी जानते हैं।

• महाराष्ट्र के बीड जिले में गाय चोरी होने के झूठे आरोप में एक जूता व्यापारी पर गो रक्षकों की भीड़ ने हमला कर दिया। उसे गम्भीर हालत में अस्पताल में भर्ती करवाया। इस मामले में पुलिस ने चार लोगो को गिरफ़्तार किया है।

यहाँ केवल कुछ उदाहरण दिये गये हैं, पर ऐसी घटनाओं की सूची काफ़ी लम्बी है। साम्प्रदायिक घटनाओं में आमतौर पर ग़रीब व निम्न मध्यवर्गीय मुसलमान को निशाना बनाया जाता है और एक बड़ी मुसलमान आबादी के बीच डर का माहौल पैदा किया जाता है। मॉब-लिंचिंग की इन घटनाओं पर सोचते समय यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि यह फ़ासीवादी राजनीति का ही एक हिस्सा है। शुरू में फ़ासीवादी राजनीति के तहत अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया जाता है, बहुसंख्यक समुदाय की जनता के सामने उन्हें एक दुश्मन के रूप में पेश किया जाता है, पूँजीवादी व्यवस्था के सभी पापों का ठीकरा इस काल्पनिक दुश्मन अल्पसंख्यक आबादी के सिर पर फोड़ दिया जाता है, फ़ासीवादी नेतृत्व को बहुसंख्यक समुदाय के अकेले प्रवक्ता और हृदय-सम्राट के रूप में पेश किया जाता है और बाद में हर उस शख़्स को जो फ़ासीवादी सरकार की आलोचना करता है, उसे इस नक़ली दुश्मन की छवि में समेट लिया जाता है। मक़सद होता है पूँजीवादी व्यवस्था व कारखाना मालिकों, ठेकेदारों, पूँजीवादी ज़मीन्दारों, धन्नासेठों, धनी व्यापारियों आदि के समूचे वर्ग को कठघरे से बाहर करना, उन्हें बचाना, जबकि उनके कुकर्मों का दोष आम मेहनतकश अल्पसंख्यक आबादी पर डाल देना और इस प्रकार समूची मेहनतकश आबादी को ही धर्म के नाम पर आपस में लड़वा देना, ताकि असली दुश्मन, यानी मालिकों, व्यापारियों, पूँजीवादी ज़मीन्दारों, व धन्नासेठों, यानी लुटेरों के वर्ग को बचाना। जो भी इस साज़िश के ख़िलाफ़ खड़ा होता है, उसे भी दुश्मन व "राष्ट्र-विरोधी" क़रार दे दिया जाता है।

नतीजतन, केवल किसी अल्पसंख्यक समुदाय को ही काल्पनिक दुश्मन के रूप में नहीं पेश किया जाता बल्कि नागरिक-जनवादी अधिकारों के लिए लड़ने वालों, मज़दूरों व उनकी ट्रेड यूनियनों, और फिर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को बहुसंख्यक समुदाय के दुश्मन के रूप में पेश किया जाता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, वह तमाम लोग जो समाज में वैज्ञानिकता, तार्किकता एवं अन्धविश्वास उन्मूलन का काम करते हैं, उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया जाता है। दाभोलकर, कलबुर्गी व पनसारे की हत्याएँ इस बात का सबूत है। मॉब लिंचिंग की इन घटनाओं के द्वारा आम लोगों के बीच उन्मादी माहौल तैयार किया जाता है ताकि इन नक़ली मुद्दों में फँसकर मेहनतकश अवाम अपने ज़रूरी एवं असली सवाल न उठा सकें इसलिए ऐसा किया जाता है।

मज़दूरों और मेहनतकशों को याद रखना चाहिए कि अगर वे दमन व उत्पीड़न, फ़ासीवादी हिंसा की हर घटना के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते तो वे शासक वर्ग, राज्यसत्ता और फ़ासीवादी शक्तियों द्वारा हिंसा करने के "अधिकार" को मौन सहमति देता है और इसी हिंसा का ये प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ कल मज़दूरों और मेहनतकशों के विरुद्ध भी खुलकर इस्तेमाल करेंगी और आज भी कर रही हैं। क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग एक क्रान्तिकारी राजनीतिक वर्ग के तौर पर अपने आपको तभी संगठित कर सकता है जब व शोषण, दमन व उत्पीड़न की हर घटना के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाये चाहे वह उसके देश में हो या फिलिस्तीन में, चाहे वह मुसलमानों, औरतों या दलितों का ख़िलाफ़ हो या फिर दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं के विरुद्ध। यह हमारा बुनियादी उसूल है।

आख़िर में हमें **भगतसिंह** की यह बात ज़रूर याद रखनी चाहिए :

"दंगों का इलाज़ यदि हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है। दरअसल भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी ख़राब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता... लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

*(भगतसिंह के लेख – **'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज'** का एक अंश)*

अब सम्भल और अजमेर के ज़रिए साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ाने की तैयारी में जुटा फ़ासीवादी गिरोह!!

(पेज 6 से आगे)

फ़ैसले को अब तमाम निचली अदालतें लागू कर रही हैं और संघ परिवार के लिए यह साम्प्रदायिक माहौल तैयार करने की ज़मीन मुहैया करा रहा है।

एक बार ज़रा ठण्डे दिमाग से सोचें और बतायें कि आज इस देश की बड़ी मेहनतकश आबादी के सामने ज्वलन्त प्रश्न क्या है! यह कि कब कहाँ कौन-सा पूजा स्थल बना था और किस मस्जिद के नीचे मन्दिर के अंश हैं या किस हिन्दू मन्दिर के नीचे बौद्ध धर्मस्थलों के अवशेष हैं? या फ़िर महँगाई, शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य के सवाल प्रमुख हैं?

हमारे देश में पर्याप्त पूजा के स्थल हर धर्म के लोगों के लिए मौजूद हैं। शायद ही यह किसी के लिए कोई सवाल हो कि फ़लाने जगह पर पहले मन्दिर था या मस्ज़िद!

मन्दिर-मस्जिद के इस मुद्दे को भाजपा व संघ परिवार द्वारा उठाये जाने का प्रमुख कारण यही है कि आम जनता अपनी ज़िन्दगी के असल सवालों पर न सोच सके, अपनी बदहाल होती परिस्थितियों के लिए ज़िम्मेदार सरकार की नीतियों पर सवाल न खड़ा कर सके, इसलिए उन्हें धर्म के नाम पर, मन्दिर-मस्जिद के झुनझुने पकड़ाये जा रहे हैं। लोगों के सामने मुसलमानों को नक़ली शत्रु के तौर पर पेश करके, सत्ता में बैठी फ़ासीवादी ताक़तें आज खुलेआम बड़ी पूँजी की सेवा में लगी हुई हैं!

इसलिए, भाजपा की इस फ़ासीवादी राजनीति को समझते हुए यह तय करना होगा कि हमें क्या चाहिए? शिक्षा-चिकित्सा-रोज़गार-आवास के अपने बुनियादी हक़ चाहिए या फिर मन्दिर-मस्ज़िद के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे?

इतिहास में पहले जो घटनाएँ घटित हुईं उनका हिसाब वर्तमान में चुकता नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिए। आज का ज़िन्दा सवाल यह है ही नहीं। जिस देश में हर रोज़ तीन हज़ार बच्चे भूख़ और कुपोषण से मरते हो, महँगाई, बेरोज़गारी की वज़ह से परेशान जनता घुट-घुटकर जीने के लिए मजबूर हो, आये दिन स्त्रियों के साथ भयंकर अपराध होते हों, जाति-धर्म के नाम पर होने वाले दंगों और झगड़ों में मेहनतकशों के घर के बच्चे मरते हों, वहाँ मन्दिर और मस्जिद का सवाल प्रमुख कैसे हो सकता है? एक ऐसे मुल्क़ में इतिहास के सैकड़ों वर्ष पहले हुए अन्याय का बदला लेना मुद्दा कैसे हो सकता है??

अगर यह मुद्दा मान लिया जाये तो फिर हर उस स्थान के इतिहास को पीछे जाकर देखा जाना चाहिए जहाँ आज कोई मन्दिर या मस्जिद है। उसी जगह पर न जाने उससे पहले कितने क़िस्म के धर्मस्थल रहे होंगे! इस मामले पर ज़रा-सा तार्किक विचार करते ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कितनी निरर्थक, पीछे ले जाने वाली और प्रतिक्रियावादी बात है। इतिहास को पीछे ले जाने वाली ताक़तें ही आज इसका इस्तेमाल कर रही हैं और लोगों की वर्ग चेतना के अभाव का लाभ उठाकर असल मुद्दों से भरमा रही हैं। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद ऐसी ही एक ताक़त है जो आम भारतीय जनता के बीच तार्किक दृष्टि की कमी, वर्ग चेतना की कमी, वैज्ञानिकता की कमी का फ़ायदा उठाते हुए उसे धर्म के आधार पर बाँट देती है।

सम्भल के पूरे मसले ने एक बार फिर न सिर्फ़ न्याय व्यवस्था के फ़ासीवादी चरित्र को पुष्ट किया है बल्कि यह भी दिका दिया है कि पूरी राज्य मशीनरी का किस हद तक फ़ासीवादीकरण हो चुका है। भारत में फ़ासीवादियों ने पिछले कई दशकों के दौरान राज्य की तमाम संस्थाओं में व्यवस्थित तौर पर घुसपैठ की है जिसके परिणाम आज हमारे सामने हैं।

अपने आक़ा पूँजीपतियों की सेवा के लिए वे लोगों को धर्म के नाम पर भड़काने और लड़ाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। हमें उनकी साज़िश को समझना होगा और लोगों के बीच उसका परदाफ़ाश करने के लिए हर सम्भव प्रयास करना होगा।

अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार : पूँजीवाद के इतिहास से उपनिवेशवाद के ख़ूनी दाग़ साफ़ करने के प्रयासों का ईनाम

● योगेश

साल 2024 के अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार 3 अमेरिकी अर्थशास्त्रियों को दिया गया है। नोबेल समिति के अनुसार, डैरोन ऐसमोग्लू, साइमन जॉनसन और जेम्स रॉबिन्सन को यह पुरस्कार इस विषय पर उनके शोध के लिए दिया गया है कि "विभिन्न देशों में आय के बीच अन्तर इतना बड़ा और इतना स्थायी क्यों है?"

ये और बात है कि उनके द्वारा विकसित सिद्धान्त और उसके परिणामस्वरूप उनके द्वारा दिये गये राजनीतिक नुस्खे, दोनों ही त्रुटिपूर्ण हैं। इसके बावजूद उन्हें अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार के इतिहास और उद्देश्य की निरन्तरता को जारी रखते हुए नवाज़ा गया है : उन लोगों को मान्यता देने के लिए जो जाने या अनजाने पूँजीवाद के अस्तित्व को उचित ठहराते हैं या इसे 'कम बुरा' बनाने के उपाय प्रदान करने का प्रयास करते हैं, कोई सुधार, कोई पैबन्दसाज़ी कर मौजूदा मानवद्रोही व्यवस्था में ही कुछ बेहतरी चाहते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो आम तौर पर ऐसा ही हुआ है।

इस बार का पुरस्कार भी कुछ और नहीं बल्कि आज के समय में शासक वर्ग की शैक्षणिक और बौद्धिक आवश्यकताओं को दर्शाता है। यहाँ हम अपना ध्यान इन अकादमीशियनों द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्त के दिवालियेपन पर केन्द्रित करेंगे और दिखलायेंगे कि न सिर्फ़ यह सिद्धान्त ऐतिहासिक तौर पर ग़लत ठहरता है बल्कि यह सचेतन तौर पर पूँजीवाद को उसके ऐतिहासिक अपराधों और करोड़ों लोगों के ख़ून से रंगे उसके हाथों को छिपाने का प्रयास मात्र है।

पुरस्कृत अकादमीशियन नव संस्थागत अर्थशास्त्र (New Institutional Economics) से आते हैं जिनका आर्थिक विकास की व्याख्या करने के लिए संस्थाओं के बीच, संस्थाओं और व्यक्तियों के बीच के परस्पर सम्बन्ध पर विशेष ज़ोर होता है। इसके अलावा इनके अनुसार आर्थिक विकास में राज्य की निष्क्रिय भूमिका नहीं होती है। यहां 'संस्थाओं' से तात्पर्य देश में उत्पादन के क़ायदे–क़ानूनों से है; इसमें उनका सूत्रीकरण करने वाली और उनको लागू करने वाली संस्थाएँ और सबसे महत्वपूर्ण स्वयं सरकार व उसके निकाय शामिल हैं। उदाहरण के लिए, निजी सम्पत्ति की सुरक्षा के क़ानून, अनुबन्धों की प्रवर्तनीयता, राज्य की प्रभावशीलता, आदि।

इनके अनुसार किसी भी राष्ट्र की समृद्धि उसके राजनीतिक संस्थानों का चरित्र और उनकी प्रभावशीलता पर निर्भर करती है और उस राष्ट्र की आर्थिक संस्थाएँ मूल रूप से इन राजनीतिक संस्थाओं पर निर्भर करती हैं। ये आर्थिक संस्थाएँ पलटकर उन राजनीतिक संस्थाओं को मज़बूत बनाती हैं। यानी यह एक "सुचक्र" ("virtuous cycle") है। उनके अनुसार, यदि आर्थिक विकास का अध्ययन किया जाये तो भूगोल, तकनीक, आदि केवल एक निष्क्रिय भूमिका निभाते हैं।

इसके अलावा, वे कहते हैं कि उपनिवेशवादियों द्वारा स्थापित संस्थाएँ किस तरह की थीं, यह बात उस देश की समृद्धि में निर्णायक भूमिका निभाती है। यानी कि यदि उपनिवेशवादियों ने किसी देश या महाद्वीप में बसने की योजना बनायी तो वे वहाँ 'समावेशी' संस्थाएँ स्थापित करते हैं जो मुक्त प्रतिस्पर्धा, आविष्कार और निवेश सुनिश्चित करती हैं, और इनके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास होता है। इसका उल्टा भी सच है। यदि उपनिवेशवादियों का मक़सद बसना नहीं है तो वे उपनिवेश को केवल निचोड़ने वाली संस्थाएँ स्थापित करते हैं जो अनिवार्य रूप से शोषक होती हैं और मुक्त प्रतिस्पर्धा, नवाचारों में बाधा डालती हैं और निवेश को हतोत्साहित करती हैं, इसलिए आर्थिक प्रगति बाधित होती है। यानी जहाँ कहीं यूरोपीय साम्राज्यवादी बस गये और वहाँ की मूल आबादी का उन्होंने जनसंहार करके एक 'नया इंग्लैण्ड', 'नया फ्रांस' आदि बसा लिया, वहाँ उन्होंने समावेशी संस्थाएँ बनायीं, उदार पूँजीवादी लोकतन्त्र खड़ा किया और नतीजतन वहाँ आर्थिक विकास हुआ! जबकि जिन देशों में उपनिवेशवादी स्थायी तौर पर बसे नहीं, 'सेटल' नहीं हुए, वहाँ बस उन्होंने उन देशों को लूटा और निचोड़ा और इस प्रकार वहाँ उसी के अनुसार निचोड़ने वाली संस्थाएँ बनायीं, नतीजतन, विकास को अवरुद्ध किया। अब आइए इस सिद्धान्त के दिवालियेपन को समझते हैं।

सबसे पहले तो उनका सिद्धान्त उपनिवेशवाद के रक्तरंजित इतिहास को साफ़ करने की कोशिश करता है। वे एक भी जगह उपनिवेशवाद द्वारा ग़ुलाम देशों के लोगों पर की गयी लूट, हत्या और अत्याचारों को ध्यान में नहीं रखते हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि पुरस्कार प्राप्त करने के बाद जीतने वाले एक अर्थशास्त्री ऐसमोग्लू ने कहा कि उपनिवेशवाद के कुकर्मों पर विचार करने में उनकी दिलचस्पी नहीं थी। उपनिवेशीकरण की रणनीतियों के जो निहितार्थ थे बस उन्हीं में उनकी दिलचस्पी थी। हालाँकि अगर इस स्पष्ट स्वीकारोक्ति को छोड़ भी दिया जाये तो वैज्ञानिक व ऐतिहासिक रूप में उनका सिद्धान्त अन्य जगहों पर भी बुरी तरह विफल होता है। मसलन, उपनिवेशवाद के परिणाम उपनिवेशवादी देशों और उपनिवेशों के लिए समान या सीधे समानुपाती नहीं होते हैं। सच्चाई तो यह है कि उपनिवेशवादी देश ग़ुलाम देशों की भूमि से कच्चा माल व अन्य प्राकृतिक संसाधन लूटते हैं, वहाँ की जनता का सस्ता श्रम निचोड़ते हैं और ग़ुलाम देशों की क़ीमत पर अपने देश को समृद्ध बनाते है। इसलिए, पश्चिमी उदार लोकतंत्र वाले साम्राज्यवादी देश, जिनकी ये नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रशंसा करते नहीं थकते, उपनिवेशवाद की सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, यानी दुनिया के तमाम देशों को गुलाम बनाकर और उन्हें लूटकर आर्थिक समृद्धि के वर्तमान स्तर पर पहुँचे हैं।

इन अर्थशास्त्रियों का शोध उत्पीड़ित और उत्पीड़क देश के लिए उपनिवेशवाद के परिणामों में अन्तर को ध्यान में नहीं रखता है। मसलन, इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता कि बंगाल के अकाल का ब्रिटेन और भारत पर समान प्रभाव नहीं पड़ा था। उल्टे बंगाल में अंग्रेज़ी राज के दौरान हुआ अकाल ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की उन नीतियों का परिणाम था, जिनका मकसद था भारत के श्रम व प्रकृति को लूटना और ब्रिटेन के पूँजीपति वर्ग को समृद्ध बनाना।

दूसरा, इस शोध से प्रतीत होता है मानो शोधकर्ता उपनिवेशवाद के 'सकारात्मक' और 'नकारात्मक' तत्वों की पड़ताल कर रहे हैं और ये बताने का प्रयास कर रहे हैं कि 'अच्छे वाले उपनिवेशवाद' के कुछ सकारात्मक भी थे! यहाँ उनका इशारा सेटलर उपनिवेशों की ओर है। यदि उपनिवेशवादियों ने बसने की योजना बनायी, जैसाकि न्यूज़ीलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया या अमेरिका जैसे सेटलर उपनिवेशों (जहाँ पश्चिमी यूरोपीय आबादी आकर बसी) में हुआ, तो उपनिवेश बनाये गये देश में आर्थिक समृद्धि होगी क्योंकि तब उपनिवेशवादी उपनिवेशित भूमि पर 'समावेशी' संस्थाएँ स्थापित करेंगे। दूसरी ओर, उपनिवेशवादी उन जगहों पर महज़ उस देश को निचोड़ने वाली संस्थाएँ स्थापित करते हैं जहाँ वे बसने की योजना नहीं बनाते हैं, जैसा कि भारत में या मोटे तौर पर अफ्रीका के अधिकांश हिस्सों में हुआ है। यहां 'समावेशी' और 'सारवत' का उपयोग मुक्त बाज़ार प्रतिस्पर्धा, निजी सम्पत्ति की सुरक्षा, सरकारी संरचना आदि के चरित्र व उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति को परिभाषित करने के लिए किया गया है। सेटलर उपनिवेशों की 'समावेशी' संस्थाएँ इन नोबेल विजेता अर्थशास्त्रियों के अनुसार, मुक्त बाज़ार प्रतिस्पर्धा, सुरक्षित निजी सम्पत्ति अधिकार, एक कारगर उदार लोकतंत्र, नवोन्मेष, आविष्कार और निवेश को बढ़ावा देती हैं, जिससे आर्थिक समृद्धि होती है। जबकि 'सारवत' संस्थाएँ एकाधिकारवाद, सर्वसत्तावादी सरकारें, जवाबदेही के अभाव और मनमानेपन, आदि को जन्म देती हैं जो आर्थिक विकास में बाधा डालती हैं। ये झूठे और दरिद्र सिद्धान्त न सिर्फ अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों/महाद्वीपों की मूल आबादी के भयंकर जनसंहार की सच्चाई को छिपाते हैं, बल्कि ये इज़रायल जैसे आज के हत्यारे व निरंकुश नस्लवादी शासन को भी सही ठहराती है।

यह पूरा विश्लेषण किसी देश के ऐतिहासिक विकास पर उपनिवेशवाद के असर को ध्यान में नहीं रखता है। मिसाल के तौर पर, सबसे पहली बात तो यह है कि सेटलर उपनिवेशवाद ने जहाँ कहीं भी बसावट की वहाँ की स्थानीय आबादी को लगभग मिटा दिया और अगर कुछ आबादी बच गयी तो उसे भयंकर अत्याचार और दासत्व की स्थिति में रखा। इसलिए, जो 'समावेशी' संस्थाएँ नये सिरे से बनायी भी गयी होंगी, वे पश्चिमी उपनिवेशवादियों द्वारा लायी गयी थीं, उन्हीं के लिए थीं और वे स्थानीय आबादी के लिए तो कम से कम 'समावेशी' नहीं थीं, जिनके अस्तित्व को ही समाप्त किया जा रहा था। दूसरा, इस विश्लेषण में किसी देश भी की आन्तरिक गतिशीलता को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया गया है और बाहरी हस्तक्षेप (उपनिवेशवाद) को ग़ुलाम देश के आर्थिक विकास के लिए एक प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाया गया है। यह न केवल आर्थिक प्रगति के लिए ग़ुलाम देशों द्वारा उपनिवेशित होने की आवश्यकता और सकारात्मकता स्थापित करने की कोशिश करता है, बल्कि उपनिवेशवादियों द्वारा उपनिवेशों पर अत्याचारों के इतिहास को मिटने का प्रयास करता है। इतिहास के सन्दर्भ में भी विश्लेषण निहायत कमज़ोर और ग़लत है क्योंकि, उदाहरण के लिए, भारत में पहले से ही पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के बीज जन्म ले चुके थे, जो कालान्तर में विकसित होते और भारत अपने रास्ते से सामन्तवाद से मुक्ति पाता, पूँजीवाद और पूँजीवादी लोकतन्त्र की ओर जाता। लेकिन जब यह प्रक्रिया शुरू ही हुई थी ठीक उसी समय ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने आक्रमण करना शुरू किया था। मुख्य रूप से किसी देश का विकास स्वयं उसकी उत्पादक शक्तियों (यानी मनुष्य, प्रकृति के बारे में उसकी जानकारी और प्रकृति को अपने उपयोग के अनुसार बदलने की उसकी क्षमता व उपकरण) और उत्पादन सम्बन्धों (इस प्रकार उत्पादन करने की प्रक्रिया में मनुष्यों के बीच बनने वाले सम्बन्ध) के अपने आन्तरिक संघर्ष से प्रेरित होते हैं। इसके अलावा, किसी देश में कौन सी संस्थाएँ हैं, यह विभिन्न दूसरे कारकों पर निर्भर करता है। ये कारक हैं किसी देश में उत्पादक शक्तियों व उत्पादन सम्बन्धों के बीच अन्तरविरोध की प्रकृति व चरण, उसके आधार पर पैदा होने वाला वर्ग संघर्ष, राजनीति, विचारधारा, संस्कृति, आदि। संस्थाएँ हवा में नहीं पैदा होती हैं। यह केवल "सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग" या बाहरी हस्तक्षेपकर्ताओं द्वारा थोपी गयी उदारता या मजबूरियों की बात नहीं है। नतीजतन, इन अर्थशास्त्रियों का समूचा विश्लेषण ही अनैतिहासिक नज़रिये से ग्रस्त है।

इसके अलावा, प्रस्तावित सिद्धान्त समाज के आर्थिक आधार और उसकी अधिरचना के बीच द्वन्द्व को समझने में विफल रहता है। यानी समाज में मौजूद उत्पादन पद्धति, उत्पादन सम्बन्ध व उत्पादक शक्तियों के बीच अन्तरविरोध और दूसरी ओर समाज में इस आर्थिक आधार पर खड़ी राजनीति, विचारधारा, कानून, संस्कृति आदि की खड़ी समूची अट्टालिका के बीच के रिश्ते के बारे में इन अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त उल्टा रिश्ता बिठा देता है। राजनीतिक संस्थाओं को आर्थिक संस्थाओं के मूलभूत निर्धारक के रूप में मानना न केवल सिर के बल खड़े होने के समान है, बल्कि यह इन संस्थाओं की उत्पत्ति, कारण और परिवर्तन की गति को भी तार्किक रूप में स्पष्ट नहीं कर सकता है। दूसरा, पश्चिमी उदार लोकतंत्रों के साथ हर देश की प्रगति की अनैतिहासिक तुलना करने और यह दिखलाने का उनका प्रयास कि उदार पूँजीवादी लोकतंत्र आर्थिक विकास के लिए सबसे उपयुक्त है, पूँजीवाद के भाड़े के कलमघसीट फ्रांसिस फुकोयामा के इस दावे को सिद्ध करने का एक दरिद्र प्रयास है कि पूँजीवाद मानवता के इतिहास का उच्चतम स्तर है। उनका यह तर्क कि उदार लोकतंत्र आर्थिक विकास के लिए एक पूर्वशर्त है, न सिर्फ़ सोवियत संघ (जिसमें उदार पूँजीवादी लोकतंत्र नहीं था बल्कि सर्वहारा लोकतन्त्र था) में 1917 से 1953 के बीच मज़दूर वर्ग की सत्ता की अभूतपूर्व आर्थिक सफलता की व्याख्या कर पाता है, न चीन में मज़दूर वर्ग की समाजवादी सत्ता की 1949 से 1976 के बीच भारी आर्थिक तरक्की की व्याख्या कर पाता है। बल्कि यह स्वयं उन देशों में पूँजीवादी खुली तानाशाही या सामाजिक-साम्राज्यवादी या सामाजिक फ़ासीवादी बुर्जुआ सत्ता के मातहत पूँजीवादी आर्थिक विकास की भी व्याख्या नहीं कर पाता है, जहाँ पूँजीपति वर्ग ने कोई उदार पूँजीवादी लोकतन्त्र नहीं क़ायम किया था। मसलन, 1976 के बाद का चीन (जो 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध

(पेज 12 पर जारी)

महाराष्ट्र में भाजपा-नीत गठबन्धन की जीत और झारखण्ड में कांग्रेस-नीत इण्डिया गठबन्धन की जीत के मज़दूर वर्ग के लिए मायने

(पेज 1 से आगे)

कारकों को वैसे भी विश्लेषण में शामिल करके चला जाना चाहिए। इसके अलावा, ख़ैराती कल्याणवाद का भी चुनावों में भाजपा-नीत गठबन्धन को पर्याप्त लाभ मिला। एक-एक करके महाराष्ट्र के चुनाव नतीजों का विश्लेषण करने से इनके पीछे काम कर रहे वर्गीय कारण स्पष्ट हो जायेंगे।

ख़ैराती कल्याणवाद + साम्प्रदायिक उन्माद

फ़ासीवादी मोदी सरकार के पिछले दस सालों में फ़ासीवादी सत्ता ने पहले देश की सबसे ग़रीब मेहनतकश आबादी को बदहाली के सबसे निचले स्तरों पर पहुँचा दिया। विश्व भूख सूचकांक से लेकर अमीर व ग़रीब के बीच मोदी सरकार के दौरान बढ़ी खाई पर आयी देशी-विदेशी रपटों से यह बात आईने की तरह साफ़ है। एक दफ़ा जब देश की मेहनतकश जनता के सबसे ग़रीब हिस्सों को भुखमरी की कगार पर पहुँचा दिया गया तो उन्हें अलग-अलग तरह की ख़ैरात बाँटी गयी। चाहे वह 5/10 किलो अनाज हो, खातों में मामूली नकद राशि स्थानान्तरित करना हो, विभिन्न स्त्री कल्याण योजनाओं के तहत कौड़ियाँ बाँटना हो, ख़ैराती कल्याण की ये योजनाएँ मोदी सरकार और इस दौर में अलग-अलग राज्यों में फ़ासीवादी सरकारों की पद्धति का एक हिस्सा रही हैं।

महाराष्ट्र में भी दो ऐसी योजनाएँ लोकसभा चुनावों में झटके के बाद भाजपा-नीत गठबन्धन की सरकार (जो मूलत: और मुख्यत: भाजपा की ही सरकार है) लागू कीं। इसमें पहली है लड़की-बहिन योजना। इस योजना के तहत इस सरकार ने 2.3 करोड़ औरतों को प्रति माह रु. 1500 देने की शुरुआत की गयी थी। इस रक़म को बढ़ाकर रु. 2100 कर दिया गया। इसके जवाब में कांग्रेस-नीत गठबन्धन ने वायदा किया कि वह इस योजना की रक़म को बढ़ाकर रु. 3000 कर देगा, अगर वह चुनाव जीतता है। लेकिन इस ख़ैराती कल्याणवाद की नीति पर वास्तविक चोट करने के लिए महाविकास अघाड़ी ने कोई क़दम नहीं उठाया। उल्टे ख़ैराती कल्याणवाद के मामले में ही प्रतिस्पर्द्धा की। इसका कोई लाभ उसे नहीं मिला। दूसरी ओर, इस योजना के तहत दी जा रही रक़म को बढ़ाने का वायदा शिन्दे सरकार ने फ़ौरन ही लागू कर दिया। यह एक प्रकार से वोटों को ख़रीदने के लिए चलायी गयी ख़ैराती योजना थी। आम जनता के परिवारों को रोज़गार देने, उनको शिक्षा, चिकित्सा और आवास देने, ग़रीब किसानों को सरकारी सहायता देने के वास्तविक क़दमों के बजाय, भाजपा सरकार इसी प्रकार के क़दम उठाती रही है और प्रभावी राजनीतिक विरोध की अनुपस्थिति और राजनीतिक चेतना के अभाव के कारण भाजपा के ये क़दम किसी-न-किसी हद तक कामयाब भी होते रहे हैं। विकल्पहीनता में, निरन्तर अभाव और ग़रीबी में रहने और आशाओं के स्तर के ही चेतना की कमी के कारण नीचे आ जाने के कारण यह ख़ैरात भी लोगों के वोटों को भाजपा की ओर मोड़ देने में कामयाब हो जाती है। ज़ाहिर है, इस ख़ैराती कल्याणवाद के साथ फ़ासीवादी साम्प्रदायिकता के प्रचार, जोड़-तोड़, चुनावी घपलों, पूँजी की ताक़त के ज़रिये डमी उम्मीदवाद खड़ा करने, राजनीतिक विरोधियों या विपक्षी उम्मीदवारों को ख़रीद लेने या नामांकन वापस लेने पर मजबूर कर देने जैसी तरक़ीबों के मिश्रण के साथ ही यह ख़ैराती कल्याणवाद काम कर सकता है। लेकिन निश्चय ही इसका असर होता है।

ऐसी ही एक अन्य नीति जो भाजपा-नीत शिन्दे सरकार ने लागू की थी वह थी भवान्तर भरपाई योजना (बीबीवाई)। इस योजना के तहत सरकार से नाराज़ चल रहे सोयाबीन और कॉटन फार्मरों के गुस्से को शान्त किया गया और उन्हें भारी राहत दी गयी। इसके अलावा, जो केन्द्रीय ख़ैराती कल्याणवाद पहले से जारी था, उसका भाजपा और संघ परिवार की सांगठनिक मशीनरी द्वारा प्रभावी तरीक़े से प्रचारित भी किया गया।

इस ख़ैराती कल्याणवाद के साथ भाजपा ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान समेत कई राज्यों में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने की रणनीति को मिश्रित किया है। महाराष्ट्र में भी भाजपा ने यही रणनीति अपनायी। 'बँटेंगे तो कटेंगे' और 'एक हैं तो सेफ़ हैं' सीधे-सीधे मुसलमान-विरोधी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी उन्माद भड़काने के नारे थे। एक नकली दुश्मन का भय पैदा करने के लिए यह नारे दिये गये थे और क्रान्तिकारी हस्तक्षेप की कमी या उसकी पूर्ण अनुपस्थिति के कारण बेरोज़गारी, महँगाई, सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता से दिमाग़ी तौर पर थकी हुई आम आबादी का एक विचारणीय हिस्सा ऐसे फ़िरकापरस्त नारों से पैदा की जाने वाली अन्धी प्रतिक्रिया में बह भी जाता है। निश्चित तौर पर, इस बार भी ऐसे नारों का आम जनता के बीच असर हुआ था। वहीं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपनी पूरी सांगठनिक मशीनरी को इस प्रचार को असरदार बनाने में लगा दिया था।

जरांगे पाटिल, मराठा आरक्षण का आन्दोलन और अन्य पिछड़ी जातियों के वोटों का भाजपा की ओर जाना

जरांगे पाटिल के आन्दोलन के अस्पष्ट तौर पर ही सही पर भाजपा-विरोधी रुख़ के कारण कई लोगों का यह अनुमान था कि भाजपा को भारी नुकसान होगा और मराठा वोट उसके पास नहीं जायेंगे। लेकिन जो ज़िला मराठा आन्दोलन का गढ़ था, यानी जालना, वहाँ चारों सीटें भाजपा-नीत महायुति को मिलीं। इसका कारण यह था कि ग़ैर-मराठा ओबीसी वोट एकजुट होकर महायुति की ओर गया। कांग्रेस की जो रणनीति हरियाणा में नाकामयाब हुई थी, उसी को यहाँ भी उसने लगाया: यानी केवल प्रमुख और प्रभुत्वशाली पिछड़ी जाति पर सारा ध्यान केन्द्रित करना। हरियाणा में जाटों के वोटों पर ही पूरा फ़ोकस था और इसका नकारात्मक नतीजा सामने भी आया। महाराष्ट्र में भी भाजपा ने हरियाणा की अपनी रणनीति को लागू किया, यानी प्रभुत्वशाली पिछड़ी जाति को छोड़कर अन्य पिछड़ी जातियों के वोटों को अपने पक्ष में सुदृढ़ करना। अन्य पिछड़ी जातियों के बीच मराठा आरक्षण आन्दोलन के कारण और अधिकांश बुर्जुआ पार्टियों का इस आन्दोलन के प्रति समझौते का रुख़ होने के कारण एक अलगावग्रस्त होने की और राजनीतिक नुमाइन्दगी कम कम होने की भावना व्याप्त थी। इसका पूरा फ़ायदा भाजपा ने उठाया।

इसके अलावा, मराठा वोट भी एकजुट होकर कांग्रेस, एनसीपी और शिवसेना (यूबीटी) को ओर नहीं गया। एक हिस्सा भाजपा की ओर गया। लेकिन भाजपा की प्रमुख रणनीति थी पैसे के बल पर बहुत-सी सीटों पर मराठा निर्दलीय उम्मीदवारों को खड़ा करना और मराठा वोटों को बाँट देना। यह चाल काफ़ी हद तक कामयाब भी रही। मसलन, नान्देड़ दक्षिण की सीट पर कांग्रेस का उम्मीदवार 2,132 वोटों से हार गया, जबकि एक निर्दलीय उम्मीदवार को 15,454 वोट प्राप्त हुए। इसी प्रकार कई अन्य सीटों पर भी मराठा वोटों के विभाजन के कारण महायुति के उम्मीदवार हारे।

भाजपा द्वारा उम्मीदवारों के चयन से लेकर, निर्दलीय उम्मीदवारों को खड़ाकर विपक्ष के वोट काटने, तृणमूल धरातल पर अपनी काडर मशीनरी के द्वारा अपने जुमलों और नारों के कहीं ज़्यादा सघन और व्यापक प्रचार और ग़ैर-मराठा वोटों के अपने पक्ष में सुदृढ़ीकरण तक, कई कारक मौजूद रहे जिन्होंने भाजपा की जीत में योगदान किया। दूसरी तरफ़, समाज में मौजूद वर्गीय असन्तोष, जिसमें महँगाई और बेरोज़गारी के कारण आम मेहनतकश जनता में असन्तोष, कृषि संकट के कारण ग़रीब और मँझोले किसानों में नाराज़गी और आम मध्यवर्ग में मौजूद महाविकास अघाड़ी की सरकार के प्रति नाराज़गी का प्रभावी तरीक़े से इस्तेमाल करने में भारी असफलता रही। जातिगत समीकरणों को बैठाने और मराठा वोटों पर ध्यान केन्द्रित करने के चक्कर में समाज में मौजूद वास्तविक वर्गीय अन्तरविरोधों पर कोई ठोस नारा या बात प्रभावी तरीक़े से कहने में विपक्ष बुरी तरह से नाकामयाब रहा। नतीजा यह था कि भाजपा-विरोधी वोटों की संख्या भी कम हुई और जो थे वे भ्रम और अस्पष्टता की स्थिति में बँट गये।

चुनावी जोड़-तोड़, ईवीएम घपला और धनशक्ति

पूँजीपति वर्ग का बड़ा हिस्सा भाजपा के साथ खड़ा है, यह बात सभी जानते हैं। भाजपा की पूँजीपरस्त तानाशाहाना नीतियों ने मौजूदा आर्थिक संकट के दौर में उसे लम्बे समय से पूँजीपतियों की पहली पसन्द बना रखा है। यही वजह है कि भाजपा के पास पूँजी की अकूत शक्ति है। इसके बूते विपक्ष के उम्मीदवारों को ख़रीद लेने, बिठा देने और केन्द्रीय एजेंसियों का इस्तेमाल कर उन्हें डरा-धमका देने की ताक़त भाजपा के पास मौजूद थी, जिसका इस बार भी कहीं खुले तो कहीं छिपे तरीक़े से इस्तेमाल किया गया।

इसके अलावा, चुनाव की प्रक्रिया में घपलेबाज़ी की कई रिपोर्टें सामने आ चुकी हैं। वोटों की संख्या व प्रतिशत में हेराफेरी, ईवीएम मशीनों के ज़रिये हेराफेरी और प्रशासनिक ताने-बाने का इस्तेमाल अपने पक्ष में वोटिंग को बढ़ाने व विपक्षी खेमे के वोटों को घटाने में जमकर किया गया। इस जगह कांग्रेस के उम्मीदवार को शून्य वोट मिले, जबकि वहाँ कांग्रेस वोटरों की भारी आबादी थी। वहाँ पर वोटरों ने इसके ख़िलाफ़ प्रदर्शन भी किया। लेकिन चुनाव आयोग हमेशा की तरह कान में तेल डालकर बैठा रहा। चुनाव प्रचार से लेकर नतीजों के आने तक के पूरे दौर में भाजपा और उसके सहयोगियों के विरुद्ध होने वाली शिकायतों पर कोई कार्रवाई नहीं हुई और न ही ईवीएम के मसले पर आने वाली शिकायतों पर कोई सुनवाई हुई।

निश्चित तौर पर, ये ही कारक भाजपा की जीत के लिए अकेले ज़िम्मेदार नहीं थे। लेकिन इन कारकों की भी भाजपा की जीत में महती भूमिका थी, इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता है। विपक्षी पार्टियों में सड़क पर उतरकर ईवीएम के विरुद्ध कोई आन्दोलन करने और जनता को इस मसले पर एकजुट करने और साथ ही स्वयं एकजुट होकर ईवीएम का बहिष्कार करने का दम-ख़म और हिम्मत नहीं है। नतीजतन, यह घपला जारी है और जारी ही रहेगा। इसका मुकाबला केवल जनबल के आधार पर किया जा सकता है और कोई पूँजीवादी दल इसमें कुछ करेगा, इसका गुंजाइश कम ही है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठित काडर ढाँचे की भूमिका

भाजपा और संघ परिवार के पास एक ऐसा ताक़त है, जो किसी भी अन्य पूँजीवादी पार्टी के पास नहीं है: एक विशाल, संगठित, अनुशासित काडर ढाँचा। इसके बूते पर हर चुनाव में ही उसे एक एडवाण्टेज मिलता है। निश्चित तौर पर, इसके बावजूद आर्थिक व सामाजिक असन्तोष के ज़्यादा होने पर भाजपा हार भी सकती है। लेकिन जब ऐसा होने वाला होता है, तो संघ अपने आपको चुनाव की प्रक्रिया से कुछ दूर दिखाने लगता है, ताकि हार का बट्टा उसके सिर पर लगे। ऐसी सूरत में, वह अपने आपको अचानक शुद्ध रूप से सांस्कृतिक संगठन दिखलाने लगता है और भाजपा और उसकी सरकारों के बारे में कुछ आलोचनात्मक टिप्पणी भी कर देता है। इसी को कई लोग भाजपा और संघ के बीच झगड़े के रूप में देखकर तालियाँ बजाने लगते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि यह संघ परिवार की पद्धति का एक हिस्सा है। वह पहले भी ऐसे ही काम करता रहा है। इसी के ज़रिये वह संघ की छवि को सँवारे रखने का काम करता है। भाजपा भी इसे समझती है और जानती है कि संघ की छवि का बरक़रार रहना आवश्यक है।

अब इस बात की कई रिपोर्टें सामने आ चुकी हैं कि महाराष्ट्र चुनावों में भाजपा के पक्ष में संघ ने अपने काडर ढाँचे के ज़रिये तृणमूल धरातल पर माहौल बनाने के लिए चुपचाप बेहद सघन और व्यापक प्रचार कार्य किया है। इसका निश्चित ही असर भी पड़ा है। जब आम मेहनतकश जनता के पास सच्चाई तक पहुँचने के वैज्ञानिक विश्लेषण के उपकरण नहीं होते, कोई क्रान्तिकारी शक्ति अपने राजनीतिक हस्तक्षेप के ज़रिये इस सच्चाई को व्यापक पैमाने पर जनता के सामने उजागर नहीं कर पाती, तो फिर यह

(पेज 10 पर जारी)

महाराष्ट्र में भाजपा-नीत गठबन्धन की जीत और झारखण्ड में कांग्रेस-नीत इण्डिया गठबन्धन की जीत के मज़दूर वर्ग के लिए मायने

(पेज 9 से आगे)

बात भी काफ़ी मायने रखने लगती है कि कौन-सी शक्ति अपनी बात को सबसे ज़्यादा बार दुहरा सकती है और ज़्यादा से ज़्यादा आम लोगों के पास जा सकती है। संघ के काडर ढाँचे ने यह विशेष फ़ायदा इस बार भी महाराष्ट्र चुनावों में भाजपा को पहुँचाया है।

एक फ़ासीवादी संगठन होने के नाते भाजपा को मिलने वाली इस वरीयता का मुक़ाबला केवल क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी ही कर सकती है। वास्तव में, काडर-आधारित सांगठनिक ढाँचे को फ़ासीवादियों ने कम्युनिस्टों से ही चुराया था। एक अनुशासित काडर ढाँचे के बूते किये जाने वाले फ़ासीवादी प्रचार का मुकम्मिल जवाब तो एक क्रान्तिकारी पार्टी के काडर ढाँचे के आधार पर किया जाने वाला क्रान्तिकारी प्रचार ही हो सकता है।

झारखण्ड चुनावों का मामला

झारखण्ड के चुनावों में कांग्रेस-नीत इण्डिया गठबन्धन को जीत मिली, और उदारवादियों को कुछ सान्त्वना भी मिली! इसकी वजहें कई हैं। पहली वजह तो यह है कि यहाँ की सरकार ने अपनी तरीक़े कुछ ख़ैराती कल्याणवाद किया था जिसके कारण आदिवासी वोटों का उसके पक्ष में ध्रुवीकरण क़ायम रहा। ऐसी एक ख़ैराती कल्याणवादी योजना थी मैय्या सम्मान योजना। यहाँ पर भाजपा के वोट शेयर में कोई ज़्यादा अन्तर नहीं आया, वह मोटा-मोटी पहले की तरह बरक़रार रहा।

भाजपा ने यहाँ बुनियादी मुद्दों पर कोई ख़ास चुनाव प्रचार नहीं चलाया और पूरा फ़ोकस बाहरी (मुसलमान) घुसपैठियों पर आधारित अपने झूठे फ़ासीवादी प्रचार पर रखा। यह रणनीति ज़्यादा काम नहीं आयी और व्यापक मेहनतकश व आदिवासी आबादी ने इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, वह उसके लिए मुद्दा बन ही नहीं पाया। हिमन्त बिस्वा सरमा ने यह रणनीति बनायी थी, जिसके तहत पूरा ज़ोर भाजपाइयों ने "लैण्ड और लव जिहाद" के मसले पर लगाया और यह झूठा प्रचार किया कि आदिवासी अस्मिता को बंगलादेशी मुसलमान घुसपैठियों के कारण ख़तरा पैदा हो गया है, जो उनकी ज़मीनों पर कब्ज़ा कर रहे और "उनकी औरतों" से शादियाँ कर रहे हैं, जिसके कारण आदिवासी जनसंख्या घटती जा रही है। इस झूठे प्रचार का कोई ख़ास असर नहीं हो पाया।

उत्तरी छोटा नागपुर क्षेत्र में भाजपा की यह रणनीति कुछ कारगर हुई, लेकिन संथाल परगना में उसका खाता भी नहीं खुल पाया। नौकरी का मसला और भ्रष्टाचार वहाँ की जनता के लिए बड़ा मसला बना हुआ था जिस पर भाजपा का कोई विशेष प्रचार नहीं हुआ। हेमन्त सोरेन के ऊपर ही भ्रष्टाचार के तमाम आरोप थे, जिनका इस्तेमाल करने में भाजपा नाकामयाब रही।

इसके अलावा, एक जयराम महतो का कारक भी था। झारखण्ड लोकतान्त्रिक क्रान्तिकारी मोर्चा (जेएलकेएम) ने लगभग सभी निर्वाचन मण्डलों में वोट काटे और मुख्य तौर पर भाजपा के वोट काटे। इसका फ़ायदा सीधे झारखण्ड मुक्ति मोर्चा को मिला। 11 सीटों पर जेएलकेएम को मिले वोट भाजपा और उसके सहयोगी दलों के ऊपर जीत के अन्तर से ज़्यादा थे।

इसके अलावा, महिलाओं के लिए लायी गयी कई कल्याणकारी योजनाओं का असर भी साफ़ दिखा। इसमें मैय्या सम्मान योजना और कल्पना सोरेन को इस योजना का चेहरा बनाया जाना काम कर गया। इस योजना के तहत 21 से 49 वर्ष की महिलाओं को हर माह रु. 1000 दिये जाते हैं। महिलाओं की संख्या वोट देने के मामले में पुरुषों से छह लाख ज़्यादा रही और इन वोटों का हेमन्त सोरेन की जीत में एक अहम योगदान था। यहाँ पर झामुमो का अपना ख़ैराती कल्याणवाद काम कर गया।

अन्य कई कारण थे, लेकिन भाजपा का वोट शेयर कम नहीं हुआ, यह भी एक विचारणीय बात है। वह पहले के समान 33 प्रतिशत के क़रीब बना रहा। लेकिन वोटों की अलग-अलग सीटों पर उस प्रकार की गोलबन्दी भाजपा नहीं कर सकती जो उसे ज़्यादा सीटें भी दिलाती। इसलिए झारखण्ड में फ़ासीवादी भाजपा की जनता में अपील कुल मिलाकर कम हो गयी हो, यह नतीजा निकालना भारी ग़लती होगी।

चूँकि महाराष्ट्र में भाजपा को ईवीएम समेत चुनावी घपलों को बड़े पैमाने पर अंजाम देना था, इसलिए झारखण्ड में यह काम भाजपा ने उस पैमाने पर नहीं किया। वैसे भी ऐसे छोटे राज्यों में चुनावों में हार होना भाजपा के नैरेटिव को बनाये रखने में मदद करता है कि ईवीएम से कोई घपला नहीं किया जाता। ब्रेष्ट के शब्दों में, हमें छोटे-छोटे न्याय दिये जाते हैं, ताकि ज़्यादा बड़ा अन्याय हम पर थोपा जा सके। ईवीएम के मसले पर लगने वाले आरोप वाजिब आरोप हैं। लेकिन भाजपा कुछ छोटे राज्यों में चुनावों में बड़े पैमाने पर घपले नहीं करती और कई बार उनमें हार भी जाती है। ऐसे में, वह यह सवाल पूछती है कि अगर ईवीएम घपला होता है, तो भाजपा फलाँ राज्य में कैसे हार गयी?! वैसे भी ईवीएम घपला हर सीट पर किया जायेगा तो पकड़ा जायेगा। इसलिए उन्हें उन सीटों पर ज़्यादा किया जाता है, जहाँ पारम्परिक तौर पर कम अन्तर से जीत-हार का इतिहास रहा है।

अन्त में, इन विधानसभा चुनावों ने एक बार फिर साबित किया है कि भाजपा और फ़ासीवाद को चुनावों के रास्ते हराने का सपना देखना एक ख़ामख़याली पालना है। भाजपा और संघ परिवार का फ़ासीवाद कोई चुनाव हार कर किसी राज्य में या देश में सरकारी सत्ता से कुछ समय के लिए बाहर भी हो जाये, तो राज्य के पूरे ढाँचे में उसने अपनी आन्तरिक पकड़ बना रखी है, चाहे वह कार्यपालिका हो या न्यायपालिका। ये बातें हर दिन साबित हो रही हैं। संघी फ़ासीवाद को शिकस्त देने का काम अपनी हिरावल पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है। इसलिए सर्वहारा वर्ग की ऐसी पार्टी का निर्माण, उसके नेतृत्व में जनता के ठोस मसलों पर जनता के जुझारू जनान्दोलनों का निर्माण और जनता के वर्गों के बीच दीर्घकालिक सघन और व्यापक संस्थागत सुधार कार्य व रचनात्मक कार्य के ज़रिये सामाजिक आधार और राजनीतिक चेतना का विकास ही वह रास्ता है, जिसके ज़रिये फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त दी जा सकती है।

मेट्रो रेल कॉरपोरेशन और प्रशासन की लापरवाही की वजह से पटना मेट्रो के निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों की हुई मौतें

ये मौतें नहीं, व्यवस्था के हाथों हुई हत्याएँ हैं

आकाश

हम जानते हैं कि पूँजीवादी विकास की बुनियाद मज़दूरों और मेहनतकशों की मेहनत की लूट पर टिकी हुई होती है। इस "विकास" की प्रेरक-शक्ति, मूलत: और मुख्यत:, मुनाफ़े की हवस होती है। इसके लिए पूँजीपति मज़दूरों के ख़ून-पसीने और हड्डियों के एक-एक कतरे से मुनाफ़ा निचोड़ने की कोशिश करता है। पूँजीपतियों के बीच मौजूद प्रतिस्पर्द्धा और अधिकतम मुनाफ़े की हवस उसे ऐसा करने को बाध्य करती है। इस दौरान अगर किसी मज़दूर की ज़िन्दगी भी छिन जाए तो उसे कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ता। हम यह भी जानते हैं हर दिन न जाने कितने मज़दूर दुनिया के अलग-अलग कोनों में काम के दौरान अपनी ज़िन्दगी गवाँ देते हैं। हम मज़दूरों की बदहाल ज़िन्दगी, हमारी असमय मौतों और हमारे आँसुओं के समन्दर में ही कारखाना-मालिकों, ठेकेदारों, धनी व्यापारियों और समूचे पूँजीपति वर्ग की ऐयाशी की मीनारें खड़ी होती हैं। इसी सच्चाई की एक बानगी पिछले 28 अक्टूबर को देखने को मिली जब पटना में बन रहे मेट्रो रेल के काम के दौरान 'लोकोमोटर' वाहन के ब्रेक फेल होने के कारण दो मज़दूरों की मौत हो गयी।

यह मौतें तब हुईं जब मेट्रो निर्माण के दौरान टनल खुदाई कर रहे कुछ मज़दूर लोकोमोटर की चपेट में आ गये। ज़मीन के नीचे बीस फ़ीट की गहराई में जाकर क़रीब एक किलोमीटर अन्दर मज़दूरों को टनल निर्माण का काम करना पड़ रहा है। इस दौरान घटी यह घटना महज़ कोई हादसा नहीं था, जैसा कि प्रशासन और मीडिया साबित करना चाहते हैं। नर्क से भी बदतर हालत में और बिना पर्याप्त सुरक्षा इन्तज़ामात के मज़दूरों से काम करवाए जा रहे हैं। चौबीसों घण्टे लगातार चल रहे काम को दो शिफ़्ट में मज़दूर कर रहे थे। यानी बाक़ायदा श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए 12 घण्टे की शिफ्ट चलायी जा रही है और वह भी सरकार द्वारा मेट्रो रेल निर्माण के काम में। एक शिफ़्ट सुबह नौ बजे से रात नौ बजे तक का होती थी और दूसरी शिफ़्ट रात नौ बजे से सुबह नौ बजे तक का होती थी।

27 तारीख़ की रात को ही रात वाली शिफ़्ट के मज़दूरों ने यह शिकायत की कि खुदाई कर रहे लोकोमोटिव मशीन की ब्रेक काम नहीं कर रही और इसे न चलाया जाए। इससे किसी की जान भी जा सकती है। लेकिन ठेकेदार ने मज़दूरों की एक न सुनी और उनसे कहा गया कि खुदाई जारी रखें। 28 तारीख़ की सुबह नौ बजे शिफ़्ट शुरू होने के आधे घण्टे के अन्दर मशीन का ब्रेक पूरी तरह से फ़ेल हो गया और दो मज़दूरों की मृत्यु ऐन मौके पर हो गयी। इसमें आठ मज़दूर बुरी तरह घायल हुए। यह इतना भयावह था कि दोनों मज़दूरों के शरीर का कोई हिस्सा न बचा। जब यह हादसा हुआ तो वहाँ न तो कोई इंजीनियर था और न ही कोई सुपरवाइज़र मौजूद था। ज्ञात हो कि नियमत: उन्हें वहाँ मौजूद होना चाहिए था। लेकिन हम मज़दूरों की ज़िन्दगी का पूँजीपतियों, ठेकेदारों और उनके टट्टुओं के लिए क्या मोल होता है, यह हम आये-दिन देखते ही हैं और इस भयावह और दर्दनाक घटना में भी यह देखने में आया।

पूँजीवादी व्यवस्था का मज़दूर-विरोधी, मानवता-विरोधी रुग्ण चेहरा इस भयावह घटना के बाद भी दिखा जब प्रशासन ने इसपर लीपा-पोती शुरू की। प्रशासन की तरफ़ से बताया गया कि यह एक दुर्घटना है जिसमें दो मज़दूरों की मौत हुई है और उन मज़दूरों के परिवार वालों को मुआवज़ा देने की घोषणा हो चुकी है। इसके साथ ही डीएम ने सुरक्षा के नियमों का पालन हो रहा है या नहीं, इस पर जाँच कमिटी बैठाने की बात करके खानापूर्ति करने की क़वायद शुरू कर दी। सरकार और प्रशासन ने जैसे-तैसे करके मामले को रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिशें शुरू कर दीं।

इस बीच वहाँ काम करने वाले मज़दूरों की तरफ़ से बताया गया कि इस दुर्घटना में सिर्फ़ दो लोगों की मौत नहीं हुई है बल्कि और भी लोग मलबे के नीचे दबे हुए हैं। लेकिन इस पर प्रशासन की तरफ़ से कोई कारवाई करना तो दूर, बल्कि लीपा-पोती की गयी। मज़दूरों की माँग थी कि मलबे में दबे उनके साथियों को बाहर निकाला जाये और इस पूरी घटना में मृतकों के परिवार वालों को उचित मुआवज़ा दिया जाये। इन्ही माँगों को लेकर जब पटना के एन.आई.टी मोड़ पर कई मज़दूरों ने सड़क जाम कर दिया तब वहाँ बड़ी संख्या में तैनात पुलिस-प्रशासन का मज़दूर-विरोधी रवैया साफ़ देखने को मिला। अगर काम की जगह पर सुरक्षा इन्तज़ामों और सुरक्षा के लिए आवश्यक कर्मियों और अधिकारियों की भी इसी मुस्तैदी से तैनाती की गयी होती तो मारे गये मज़दूरों की जान बच सकती थी। लेकिन इससे पूँजीपतियों के मुनाफ़े में कमी आती है, क्योंकि ये सारे सुरक्षा इन्तज़ामात करने पर ख़र्च होते हैं। इसलिए मज़दूरों को इस तरह से मरने के लिए छोड़ दिया जाता है।

इस मसले पर कोई आश्वासन देने या वार्ता करने के बजाय प्रशासन ने मज़दूरों को हड़ताल न करने की धमकी दी। इसके साथ ही किसी भी प्रकार का विरोध या प्रदर्शन करने पर उन पर लाठीचार्ज करने की भीधमकी दी गयी। वहीं दूसरी तरफ़ मृतकों की मृत शरीर तक घर वालों को नहीं सौंपे जा रहे थे और कई मज़दूर इसके लिए धरने

(पेज 12 पर जारी)

अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में धुर-दक्षिणपंथी डोनाल्ड ट्रम्प की अन्तरविरोधों से भरी जीत के राजनीतिक मायने

विवेक

बीते 7 नवम्बर को जब अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के नतीजे सामने आए और ट्रम्प विजेता घोषित हुआ, तब 2016 की उसकी पिछली जीत की तरह यह उतना अप्रत्याशित नहीं था। 7 नवम्बर को जब चुनाव परिणाम घोषित हुए तो, इन सारी अटकलों पर विराम लग गया कि इन चुनावों में क़रीबी मुक़ाबला होगा। ट्रम्प ने यह चुनाव एकतरफ़ा ही जीता। अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रम्प की जीत से पश्चिम का उदारवादी पूँजीवादी तबका आश्चर्यचकित व कुछ दुखी ज़रूर है। पश्चिमी उदारवादी अकादमिशियनों और बुर्जुआ राजनीतिक विश्लेषकों के एक हिस्से के लिए यह प्रश्न बना हुआ है कि जब अमेरिकी अर्थव्यवस्था में "बाइडेनॉमिक्स" (अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडेन की आर्थिक नीतियों के लिए दिया गया नाम) के कारण शेयर बाज़ार में वृद्धि देख रही है और बेरोज़गारी दर तथा महँगाई दर में कमी आई है, तब क्यों डेमोक्रेटिक पार्टी सत्ता में वापसी नहीं कर पायी? ऐसे विश्लेषक ट्रम्प की जीत और इन अन्तरविरोधों के कारणों को सतही परिघटनाओं जैसे ट्रम्प का ख़र्चीला प्रचार अभियान, डेमोक्रेटिक पार्टी के ढीले रवैये आदि में देखते हैं। ऐसे विश्लेषक जो अस्मितावादी चिन्तन से प्रभावित है, वे इस बात से अचम्भित है कि आख़िर काले व अन्य एथनिक अल्पसंख्यक मतदाताओं के बीच ट्रम्प का मत प्रतिशत कैसे बढ़ा? वर्ग विश्लेषण के अभाव में वे इन सवालों के उत्तर नहीं ढूँढ पा रहे हैं। इस लेख में हम ट्रम्प की जीत के कारणों की पड़ताल वर्ग विश्लेषण के मार्क्सवादी उपकरण के ज़रिये करने का प्रयास करेंगे।

डेमोक्रेटिक पार्टी का घटता जनाधार

राष्ट्रपति चुनाव की प्रक्रिया में ही दिखने लगा था कि उदारवादियों की चहेती डेमोक्रेटिक पार्टी अपनी पकड़ खो रही थी। राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए भी ऊहापोह की स्थिति बनी रही और अन्त में कमला हैरिस को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाया गया। लेकिन, प्रचार के शुरुआती चरणों में लगे झटकों से उबरकर जनता को रिझाने के लिए अपनी तथाकथित उपलब्धियों को खूब प्रचारित किया। डेमोक्रेटिक पार्टी इस बात का बार-बार प्रचार करती रही कि उसके कार्यकाल में कोरोना काल के बाद जो मुश्किल परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थी, उन पर सफलतापूर्वक काबू पाया गया। इसमें कोई दो राय नहीं थी कि, कोरोना काल के बाद के दौर में अमेरिकी अर्थव्यवस्था 2008 के मन्दी के बाद के सबसे बड़े संकट वाले दौर से गुजर रही थी। जो बाइडेन ने इसी समय राष्ट्रपति का पद सँभाला, जब महँगाई व बेरोज़गारी लगतार बढ़ रही थी। वर्ष 2022 के जून माह में अमेरिका में महँगाई दर 9 फीसदी को पार कर चुकी थी। वर्ष 2020 के अप्रैल माह में क़रीब 2 करोड़ लोगों के रोजगार छिन गए थे। इस समय बेरोज़गारी दर 13 फ़ीसदी तक पहुँच चुकी थी। इन समस्याओं से निपटने के लिए अमेरिका रेस्क्यू प्लान के जरिये क़रीब 1.9 ट्रिलियन डॉलर ख़र्च किए गए। इसके कारण 2024 आते आते, महँगाई दर 3 फीसदी और बेरोज़गारी दर 4 फीसदी रह गयी। अमेरिका के स्टॉक मार्केट की हालत भी तेज़ी से सुधरी, बड़े निवेशकों का मुनाफ़ा भी बढ़ा। यह दीगर बात है, कि 1.9 ट्रिलियन डॉलर के पैकेज की राशि अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा दुनिया भर के देशों से निचोड़े गए अधिशेष के कारण सम्भव हो पायी थी और यह रिकवरी भी दीर्घकालिक मन्दीं में एक छोटा-सा दौर था जब राज्यपोषित वित्तीय सहायता और सट्टेबाज़ी से कुछ देर के लिए कुछ राहत मिली थी।

इस बचाव योजना (बाइडेनोमिक्स!) की कुछ हद तक सफलता के बावजूद भी खाद्यान्नों की कीमत का संकट बना रहा। बाइडेन के कार्यकाल के शुरू होने के बाद से अब तक खाद्यान्न की कीमतों में क़रीब 22 फीसदी तक इज़ाफ़ा हुआ है। खाद्यान्न की बढ़ी हुई कीमतों का असर अन्य ज़रूरी सेवाओं पर भी पड़ा है। जिस स्तर से खाद्यान्नों की कीमत बढ़ी है, उसके सापेक्ष में औसत अमेरिकी के वेतन की वृद्धि कम ही रही है। परिणामस्वरूप, अमेरिका में कॉस्ट ऑफ लिविंग (जीवन जीने का औसत ख़र्च) इस हद तक बढ़ गयी है कि अमेरिकी निम्न मध्यमवर्गीय और मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए मुश्किल भरे हालात पैदा हो गए है। जिसके कारण निम्नमध्यम वर्गीय आबादी के बीच डेमोक्रेटिक पार्टी की साख कम हुई। यानी जो आर्थिक सुधार होता दिखा था, वह केवल अमेरिका के बड़े वित्तीय पूँजीपतियों के लिए था और वह भी दिखावटी ज्यादा था और उत्पादक अर्थव्यवस्था में कम।

ट्रम्प की वापसी के कारण

बुर्जुआ राजनीतिक विश्लेषकों द्वारा ट्रम्प के राष्ट्रपति चुनाव के लिए दोबारा उम्मीदवार बनने की सम्भावना 2020 में उसके कार्यकाल के ख़त्म होने के बाद से कम ही बतायी जा रही थी। ट्रम्प पर विभिन्न अपराधिक मामले चल रहे थे, कुछ में तो उस पर आरोप सिद्ध हो चुके थे। उसका पिछला कार्यकाल भी विवादों से भरा हुआ था। अपने पिछले कार्यकाल में ट्रम्प अपने मुस्लिम-विरोधी, नस्लभेदी एवं आप्रवासन-विरोधी एजेण्डा के कारण सुर्खियों में रहा, इससे अमेरिकी आबादी के एक हिस्से में उसकी लोकप्रियता पर भी असर पड़ा। साथ ही, अमेरिका के कानूनी प्रवासी, जो वहां की आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं, वो भी इस प्रवासी-विरोधी एजेण्डे से नाख़ुश थे। अमेरिका के पूँजीपति वर्ग के बीच भी ट्रम्प की छवि ऐसा राजनेता की थी, जो काफी अस्थिर है और जिसे नियन्त्रित कर पाना आसान नहीं है। इसके अलावा, अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के साम्राज्यवादी हितों की रणनीतिक सोच के दायरे में ट्रम्प उनके लिए सबसे उपयुक्त उम्मीदवार नहीं था। अपने बड़बोलेपन के कारण अमेरिका की शहरी आबादी के एक हिस्से के बीच ट्रम्प की छवि गम्भीर राजनेता की नहीं थी। वहाँ के टीवी चैनलों और अखबारों में वह हँसी का पात्र बन चुका था, जिसका एक कारण यह भी है कि अमेरिकी मीडिया व मनोरंजन उद्योग के बड़े हिस्से पर डेमोक्रैटिक पार्टी के क़रीबियों का कब्ज़ा है।

ट्रम्प अपने पूर्ववर्ती रिपब्लिकन नेताओं जैसे रोनाल्ड रीगन व जॉर्ज बुश सरीखा दक्षिणपंथी नेता नहीं है। वह रिपब्लिकन पार्टी के धुर-दक्षिणपंथी धड़े की नुमाइन्दगी करता है, पर वह मूलत: व्यवहारवादी धुर-दक्षिणपंथी है। यानी सीधे अर्थों में वह किसी तरह के सिद्धान्त या उसूल से बँधने की बजाय कार्रवाई पर ज़ोर देता है तथा ज़रूरत पड़ने पर किसी भी पद्धति का इस्तेमाल भी करता है। यह दीगर बात यह है कि यह स्वयं भी एक सिद्धान्त है, जिसका पूँजीवादी चरित्र ही है। सम्भवत: यही कारण है कि इस बार के चुनावों में उसने ज़रूरत पड़ने पर अमेरिकी एथनिक व नस्ली अल्पसंख्यकों (जैसे ब्लैक व लातिनी आबादी) को लुभाने का भी प्रयास किया और काफ़ी हद तक इसमें कामयाब भी रहा। उसने अपना सामाजिक आधार श्वेत टुटपुँजिया वर्ग व मज़दूर वर्ग के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से के बीच बनाया है। अमेरिकी वोटरों का यह हिस्सा ब्लैक, लातिनी व हिस्पैनिक लोगों और प्रवासियों से पूँजीवादी विचारधारा व राजनीति के प्रभाव के कारण उतनी ही नफ़रत करता है, जितना कि वह अमेरिका के कुलीन अभिजात वर्ग से करता है। इन टुटपुँजिया और मज़दूर वर्ग की आबादी का एक ठीक-ठाक हिस्सा मध्य-पश्चिम (मिड वेस्ट) और पूर्वोत्तर (नॉर्थइस्ट) के इलिनॉय, इण्डियाना, मिशिगन, ओहायो, पेंसिल्वेनिया और विस्कॉन्सिन जैसे राज्यों से आता है जो आज से चार-पाँच दशक पूर्व तक अमेरिका के औद्योगिक उत्पादन केन्द्र थे, लेकिन सस्ते श्रम के दोहन से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की लोभ में अमेरिकी पूँजीपतियों ने अपनी उत्पादन इकाइयाँ दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका व एशिया के देशों में स्थापित कीं, जिसकी वजह से इन राज्यों में उत्पादन का कार्य कम हो गया, फैक्ट्रियाँ बन्द हो गयीं और उनमें लगे मज़दूर बेरोज़गार और बर्बाद हो गये। इन राज्यों को रस्ट बेल्ट (ज़ंग लगी हुई पट्टी) कहा जाता है।

आज हालात यह कि 1997 के बाद से वैश्विक स्तर पर मैन्युफेक्चरिंग यानी औद्योगिक उत्पादन में अमेरिका की हिस्सेदारी 25% से गिरकर 17% हो गयी है और यह आँकड़ा भी प्रश्नों के दायरे में है। मैन्युफेक्चरिंग में लगे श्रमिकों की संख्या 1979 में 1.95 करोड़ से घटकर 2023 में मात्र 1.3 करोड़ हो गयी है। रिपब्लिकन पार्टी ने पिछले कुछ सालों में इसी आबादी के बीच अपना आधार बनाया था, जिसने अपने रोज़गार व सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा को खोया था, लेकिन इसके असली कारणों को नहीं समझती थी। यानी वह यह नहीं समझती थी कि इन समस्याओं का कारण पूँजीपतियों की मुनाफ़ाखोरी है, न कि आप्रवासी आबादी। लेकिन ट्रम्प इस क्षेत्र की आबादी को यह विश्वास दिलाने में इस बार सफल रहा कि उनकी बेरोज़गारी और बर्बादी का कारण आप्रवासी हैं। उसने अमेरिका के ग्रामीण इलाकों विशेषकर दक्षिण के राज्यों में भी प्रचार का यही ढर्रा अपनाया। ट्रम्प इन पिछड़े इलाकों में टुटपुँजिया वर्ग, पूँजीवादी फार्मरों और गोरे मज़दूर वर्ग के एक हिस्से का विश्वास जीतने में सफल रहा। उसने लोगों को यह विश्वास दिला दिया कि अगर उसे राष्ट्रपति बना दिया जाये, तो वह इस आप्रवासी आबादी से निपटने की कठोर नीतियाँ बनाएगा और उनको रोज़गार के अवसर देगा। इसका नतीजा हुआ कि रस्ट बेल्ट के राज्यों जैसे विस्कॉन्सिन और ओहियो तथा दक्षिण के राज्यों जैसे टेक्सास और लुईसियाना में उसे जीत मिली।

ट्रम्प ने पिछली हार से सबक लेते हुए अपने चुनाव प्रचार के दौरान दक्षिणपंथी लोकलुभावन जुमलेबाज़ी के ज़रिये न सिर्फ़ पुराने वोट बैंक को सुदृढ़ किया बल्कि बड़े शातिराना तरीक़े से व्यवहारवादी रुख़ अपनाते हुए काली व लातिनी (दक्षिणी अमेरिका से आये हुए लोग) आबादी के बीच भी उसने थोड़ी ही सही लेकिन पकड़ बनायी। ऐसा उसने कमला हैरिस को अभिजात कुलीन वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर और खुद को अमेरिका के टुटपुँजिया वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि के तौर पर स्थापित करके किया।

मतदान के रुझानों को देखकर इस बात को समझा जा सकता है। विभिन्न सूत्रों से आई रिपोर्टों के मुताबिक 2024 में 16 प्रतिशत काले मतदाताओं ने ट्रम्प का समर्थन किया, जो 2020 की तुलना में 8 प्रतिशत से अधिक है। वहीं क़रीब 83 प्रतिशत काले मतदाताओं ने कमला हैरिस का समर्थन किया, जो 2020 की तुलना में क़रीब 9 प्रतिशत कम है। डेमोक्रेटिक पार्टी ने लातिनी मतदाताओं के बीच भी अपनी पकड़ खो दी, 2024 में हैरिस को लातिनी मतदाताओं से क़रीब 56 प्रतिशत वोट मिले जो 2020 की तुलना में 7 प्रतिशत कम थे। दूसरी ओर, लातिनी मतदाताओं से पिछली बार की तुलना में ट्रम्प को 7 प्रतिशत ज़्यादा वोट मिले। काले व अन्य अल्पसंख्यक एथनिक समुदायों से मिलने वाले वोट प्रतिशत में हुए इज़ाफ़े का ही नतीजा था कि ज़्यादातर स्विंग स्टेट्स में रिपब्लिकन पार्टी जीत पायी। अमेरिका के ऐसे राज्य जहाँ न तो रिपब्लिकन पार्टी और न ही डेमोक्रेटिक पार्टी का वर्चस्व है, उन्हें स्विंग स्टेट्स कहा जाता है। अमेरिका में चुनावों का फैसला इन्हीं स्विंग स्टेट्स पर निर्भर करता है। यहाँ, जॉर्जिया राज्य का उदाहरण लिया जा सकता है, जहाँ बड़ी संख्या में काले मतदाता हैं। ट्रम्प को 2020 की तुलना में इन मतदाताओं से ज़्यादा वोट मिले हैं, जिससे वह इस राज्य में इस बार जीत पाया।

इसके अतिरिक्त फिलिस्तीन पर ज़ायनवादी इज़रायल द्वारा किए जा रहे नरसंहार पर बाइडेन प्रशासन ने खुलेआम न सिर्फ़ सहमति दी, बल्कि इज़रायल को आर्थिक व सैन्य सहायता भी दी और पूरी दुनिया में अपने नरसंहारक चरित्र के कारण अकेले पड़े इज़रायल को हर तरह से बचाने और समर्थन देने का काम किया। कमला हैरिस ने उप-राष्ट्रपति रहते हुए इज़रायल के सेटलर उपनिवेशवादी राज्य द्वारा फिलिस्तीनियों के बर्बरतम नरसंहार को सही ठहराया। इससे अरब-अमेरिकी आबादी और प्रगतिशील युद्ध-विरोधी अमेरिकी आबादी डेमोक्रेटिक पार्टी से नाराज़ हो गयी। इन मतदाताओं ने या तो चुनावों से ही दूरी बना ली या फिर डेमोक्रेटिक पार्टी को वोट नहीं किया। नतीजतन, एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा जो पारम्परिक तौर पर डेमोक्रेटिक पार्टी का समर्थक रहा था, उससे दूर हो गया और ट्रम्प के खेमे तक में चला गया।

बड़े पूँजीपतियों के अच्छे-ख़ासे हिस्से ने जताया ट्रम्प पर भरोसा

ट्रम्प को इस बार अमेरिका के बड़े पूँजीपतियों का पहले के मुक़ाबले भरपूर समर्थन मिला। यह 2016 व 2020 में उसके राष्ट्रपति पद के लिए दावेदारी के समय मिले समर्थन से ज़्यादा था। ख़ुद दुनिया का सबसे बड़ा रईस इलॉन मस्क ट्रम्प की दावेदारी के समर्थन में था और न सिर्फ़ उसने ट्रम्प के अभियान को ज़बरदस्त फण्डिंग दी बल्कि ख़ुद भी ट्रम्प के साथ चुनाव प्रचार में शामिल रहा। बड़े पूँजीपतियों के एक हिस्से के द्वारा ट्रम्प को समर्थन देने का एक मुख्य कारण बाइडेन के शासन काल में टैक्स सुधार का मसला भी था। जिससे अमेरिका का बड़ा पूँजीपति वर्ग एक हद तक नाख़ुश था। चुनाव प्रचार के दौरान डेमोक्रेटिक पार्टी व कमला हैरिस द्वारा इन टैक्स सुधारों को जारी रखने की घोषणाएँ की गयी थीं। अपने चुनाव प्रचार के दौरान कमला हैरिस ने कॉर्पोरेट टैक्स 28 फीसदी तक बढ़ाने का वायदा किया था। हालाँकि, यह वायदा अमेरिकी मध्यवर्ग को रिझाने का देर से किया गया प्रयास था और पहले भी डेमोक्रेटिक पार्टी ऐसे वायदों से मुकरती रही है, पर इसने अमेरिकी कॉर्पोरेट पूँजीपतियों के कान खड़े कर दिये थे। क्योंकि ट्रम्प ने 4 वर्षों के अपने शासनकाल में अमेरिकी पूँजीपतियों को सापेक्षिक तौर पर ज़्यादा टैक्स रियायतें दी थीं, हालाँकि वैश्विक

(पेज 12 पर जारी)

अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में धुर-दक्षिणपंथी डोनाल्ड ट्रम्प की अन्तरविरोधों से भरी जीत के राजनीतिक मायने

(पेज 11 से आगे)

टकरावों से अमेरिका को पीछे लेने की ट्रम्प की नीति अमेरिका साम्राज्यवादी पूँजीपति वर्ग को नहीं भाती है। दुनिया भर में युद्ध और हथियारों का निर्यात, कमज़ोर और खोखले हो चुके अमेरिकी आर्थिक वर्चस्व को क़ायम रखने के लिए ज़रूरी है। ट्रम्प की नीति इस मायने में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के मन में कुछ संशय पैदा करती रही है।

इसके अतिरिक्त बाइडेन प्रशासन ने जनता के दबाव में अलास्का के बड़े भूभाग में कच्चे तेल के लिए होने वाली ड्रिलिंग पर रोक लगा दी थी। ऐसा अमेरिका में पर्यावरण के सवाल पर हो रहे जनता के आन्दोलनों के दबाव में किया गया। बाइडेन प्रशासन के इस फैसले से तेल की निकासी और इससे सम्बन्धित उद्योगों में निवेश करने वाले पूँजीपति खुश नहीं थे। उनकी नज़रों में बाइडेन व डेमोक्रेटिक पार्टी की छवि कमज़ोर प्रशासक की थी, उन्हें अब एक ऐसे चेहरे की तलाश थी, जो जनता के ऐसे आन्दोलनों पर सख़्ती दिखा सके और पूँजीपतियों के पक्ष में नीतियाँ बनाने में हिचके नहीं। ट्रम्प इस काम के लिए बिल्कुल सही व्यक्ति है, इसलिए शुरुआती हिचकिचाहट के बावजूद अमेरिका के पूँजीपतियों के एक बड़े हिस्से ने ट्रम्प को समर्थन दिया। ट्रम्प के प्रचार अभियान को फ़ण्डिंग देने वाले एक धनपशु नेल्सन पेल्ट्ज़ ने अन्य पूँजीपतियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि वह (ट्रम्प) एक भयानक इंसान है, लेकिन हमारा देश एक बुरी स्थिति में है, और हम जो बाइडेन को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हम सभी को उसे (ट्रम्प को) अपना समर्थन देना होगा। स्पष्टत: अमेरिका के बुर्जुआ वर्ग ने यह समझ लिया था कि आज के समय में कौनसा दल व नेता उसके हितों की सच्ची नुमाइन्दगी कर सकता है।

और अन्त में...

अमेरिका में सम्पन्न हुआ यह चुनाव मूलत: दक्षिणपंथी लोकरंजकतावादी राजनीति और उदारवादी लोकरंजकतावादी राजनीति के बीच का चुनाव था। ट्रम्प जहाँ दक्षिणपंथी लोकरंजकतावादी राजनीति के एक संस्करण की नुमाइन्दगी कर रहा था, तो वही दूसरी ओर कमला हैरिस अर्ध-कल्याणकारी राज्य सरीखी व्यवस्था की पैरोकारी करने वाली उदारवादी लोकरंजकतावादी राजनीति की। इनकी साम्राज्यववादी नीतियों में महज़ परिमाणात्मक अन्तर है और इस समय अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के लिए यह मामूली अन्तर उतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितने घरेलू आर्थिक नीतियों के मसले। ज़ाहिर है, इन दो विकल्पों में से वही विकल्प चुन के आ सकता था, जिसे अमेरिका का पूँजीपति वर्ग फिलहाल अपने दूरगामी हितों की पूर्ति के लिए फिट माने। अमेरिका की जनता के लिए कई विकल्पों के बीच से एक के चुनाव से ज़्यादा यह विकल्पहीनता का चुनाव था। चूँकि अमेरिका में ऐसी किसी तरह की क्रान्तिकारी शक्ति नहीं है, जो वहाँ की जनता के सामने इस पूँजीवादी व्यवस्था का विकल्प पेश कर सके और उन्हें इसके खिलाफ़ संघर्ष के लिए एकजुट कर सके। ऐसी विकल्पहीनता की स्थिति में बुर्जुआ राजनीति के ऐसे भाँति-भाँति के संस्करण उभर कर सामने आते रहते हैं।

ट्रम्प के अमेरिका की सत्ता में वापस क़ाबिज़ होने के प्रभाव घरेलू ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर दिखायी देंगे। अपने चुनावी भाषणों में उसने कहा था कि वह अमेरिका में संरक्षणवाद की नीतियाँ लागू करते हुए, विदेशी आयातों पर टैक्स बढ़ायेगा। अपने मुस्लिम-विरोधी, नस्लवादी व आप्रवासन विरोधी रुख़ से वह अमेरिकी जनता में आपसी अलगाव को बढ़ावा देगा। हालाँकि, कई मामलों में वह अपनी पूर्ववर्ती सरकारों की नीतियों का ही अनुसरण करेगा, जैसे मध्य-पूर्व में अमेरिकी शह पर इज़रायल द्वारा किए जा नरसंहार को ट्रम्प समर्थन देना जारी रखेगा। वैश्विक स्तर पर अमेरिकी साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए अपने से पूर्ववर्ती सरकारों से ज़्यादा कठोर क़दम उठाने के संकेत उसने पहले ही दे दिये हैं। पर्यावरण के मसले पर ट्रम्प के बेतुके विचार जगज़ाहिर हैं। उसके अनुसार जलवायु परिवर्तन की बात ही फ़र्ज़ी है। उसने पहले ऐलान कर दिया था कि सत्ता में आते ही संयुक्त राज्य अमेरिका जलवायु परिवर्तन के मसले पर हुए पेरिस समझौते में अमेरिका की भागीदारी समाप्त कर देगा। सम्भव है कि वह अमेरिका की सामरिक शक्ति को बढ़ाने के लिए नाभिकीय हथियारों के निर्माण की होड़ को तेज़ कर दे।

ट्रम्प की सत्ता में वापसी के प्रभाव से भारत भी अछूता नहीं रहेगा। भारत में सत्ता पर क़ाबिज़ फ़ासीवादी शक्तियाँ धुर-दक्षिणपंथी ट्रम्प को अपना ज़्यादा बेहतर साझेदार समझती है। निकट भविष्य में सम्भव है कि भारत की फ़ासीवादी सरकार, धुर-दक्षिणपंथी ट्रम्प से सामरिक सन्धियाँ करे।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आसन्न भविष्य उथल-पुथल से भरा हुआ होगा। मध्य-पूर्व व यूरोप में पैदा हो रहे युद्ध जैसे हालात विश्व के अन्य हिस्सों में भी पनप सकते है। आज मंदीग्रस्त अमेरिकी पूँजीवाद के सामने युद्ध के जरिये उत्पादक शक्तियों का विनाश कर, पूँजी के लिए मुनाफ़े की सम्भावनाएँ तलाशने के अलावा कोई चारा नहीं है। हालाँकि, इस मामले में ट्रम्प की नीति कम से कम अभी डेमोक्रेटिक पार्टी से कम तीव्र है। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतेगा ट्रम्प भी इसी दिशा में जायेगा। लेकिन इसी उथल-पुथल के दौर में क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ भी पनपेंगी और बर्बरता के भयंकर दौर भी। ऐसे दौर में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी शक्तियों को सघन और व्यापक प्रयास करने होंगे। अपनी तैयारी को तेज़ी से मज़बूत करना होगा।

मेट्रो रेल कॉरपोरेशन और प्रशासन की लापरवाही की वजह से पटना मेट्रो के निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों की हुई मौतें

(पेज 10 से आगे)

पर बैठे थे। बाद में यह पता चला कि मृतक मज़दूरों के मृत शरीर को सीधे उन मज़दूरों के गाँव भेज दिया गया है। स्पष्ट है कि प्रशासन और उसके तहत काम कर रही ठेका कम्पनियों व ठेकेदारों को बचाने के लिए बिहार की मज़दूर-विरोधी फ़ासीवादी भाजपा के चल रही "सुशासन बाबू" की सरकार ने पूरी मुस्तैदी से काम किया था।

यह साफ़ है कि मज़दूरों की मौत किसी दुर्घटना की वजह से नहीं हुई है। बल्कि मेट्रो रेल कॉरपोरेशन की, जिसके तहत यह निर्माण कार्य हो रहा है, और बिहार सरकार व प्रशासन की लापरवाही की वजह से हुई है। सुरंग में मिट्टी उठाने वाली मशीन के ब्रेक के ढीले होने की समस्या काफ़ी पहले ही मज़दूरों द्वारा इंगित करवायी गयी थी लेकिन इस पर कोई क़दम नहीं उठाया गया। फिर उसी मशीन के ब्रेक फेल होने की वजह से कम-से-कम दो मज़दूरों की मौत हो गयी और 6 लोग गम्भीर रूप से घायल हुए। इस घटना में सबसे पहले तो मेट्रो रेल कॉरपोरेशन की जवाबदेही बनती है कि मशीन के ब्रेक ख़राब होने के बावजूद भी उसे ठीक क्यों नहीं करवाया गया और मज़दूरों को उसी मशीन से काम करने को क्यों मजबूर किया गया। जैसा कि हमने पहले बताया, मज़दूरों का यह भी कहना था कि काम करते वक़्त किसी भी इंजीनियर या सुपरवाइज़र की मौजूदगी नहीं रहती है। दूसरी तरफ़ ऐसे जोख़िम भरे काम में मज़दूरों को कोई सुरक्षा उपकरण उपलब्ध नहीं कराये जाते हैं और ना ही किसी किस्म की मेडिकल सुविधा ही दी जाती है। ऐसे में यह साफ़ है कि इस तरह की घटनाओं के लिए ज़िम्मेदार यह कॉरपोरेशन और प्रशासन और उसकी आपराधिक पूँजीपरस्ती और लापरवाही है! दूसरी तरफ़ मज़दूरों से जबरन 12 -13 घण्टे काम करवाया जाता है और काम नहीं करने पर उन्हें काम से निकाल देने की धमकी दी जाती है। सीधे तौर पर मज़दूरों के कानूनी अधिकारों को ताक पर रख दिया गया है। ना तो काम के घण्टे का कानून लागू हो रहा है और ना ही सुरक्षा के नियम लागू हो रहे हैं। और ऐसे में इस दुर्घटना के बाद जब मज़दूर प्रदर्शन कर रहे होते हैं उनका बर्बर दमन किया जाता है या उन्हें डराया-धमकाया जाता है।

इसके साथ ही बिहार में "डबल इंजन" की सरकार यानी फ़ासीवादी भाजपा और पलटू कुमार की गठबन्धन सरकार भी इसके लिए उतनी ही दोषी है। ऐसा नहीं है कि नीतीश सरकार को इस परिस्थिति की जानकारी नहीं है। लेकिन बिहार का "विकास" करवाने की और इस प्रक्रिया में पूँजीपतियों को करोड़ों-अरबों रुपये पीटने देने की होड़ में नीतीश कुमार इतने मगन हैं कि उन्हें इस बात से फ़र्क नहीं पड़ता है कि इसमें कितने लोग मारे जा रहे हैं ! पिछले कुछ सालों में ही पुल गिरने के हादसों में राज्य का अव्वल स्थान रहा है। राज्य के मुख्यमंत्री को किसी ना किसी तरह 2025 के चुनावों से पहले "विकास" के इस कीर्तिमान का उद्घाटन कर अपने नाम पर इसका प्रचार करवाना है, यानी मेट्रो रेल का उद्घाटन कम-से-कम एक लाइन पर करवाना है। इसके लिए पूँजीपतियों और ठेकेदारों को सारे नियम-क़ायदे ताक पर रखकर और मज़दूरों की जान को और भी ज़्यादा जोखिम में डालकर काम करवाने की खुली छूट दे रखी गयी है। ऐसे में, भविष्य में और भी मज़दूरों की मुनाफ़ाखोरी में हत्याएँ होने की उम्मीद की जा सकती है। सरकार और प्रशासन न तो मज़दूरों के पक्ष में खड़ा होता है और न ही भविष्य में होगा। हमारे जीवन को ऐयाशी में नहाने वाले पूँजीपति वर्ग और उसके नुमाइन्दे कीड़े-मकोड़ों का जीवन समझते हैं। हमारी मौत उनके लिए एक अखबारी ख़बर भी नहीं होती। हमसे ज़्यादा कीमती जान वे अपने पालतू जानवरों की समझते हैं।

सवाल यह है कि क्या हम अपने जीवन की कीमत समझते हैं? क्या यूँ कीड़े-मकोड़ों के समान गुमनाम मौतें मरने रहना हमें स्वीकार है? क्या अपने बच्चों के लिए यह भविष्य हमें स्वीकार है? क्या हम इंसानी जीवन की गरिमा का अहसास रखते हैं? अगर हाँ, तो हमें इस समूचे मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था के विरुद्ध गोलबन्द और एकजुट होना ही होगा। वरना हम यूँ ही जानवरों की तरह मारे जाते रहेंगे।

अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार...

(पेज 8 से आगे)

से सामाजिक-फ़ासीवादी बनने के बावजूद तेज़ी से आर्थिक विकास कर रहा था), 1930 के दशक का नात्सी जर्मनी (जिसमें फ़ासीवादी तानाशाही थी), 1960 व 1970 के दशक से ताइवान और दक्षिण कोरिया (दोनों के आर्थिक विकास की ज़मीन सैन्य तानाशाही के दौरान विकसित हुई थी)। न ही यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या कर सकता है कि भारत एक पूँजीवादी लोकतंत्र होने के बावजूद (चाहे इसमें कितनी भी खामियाँ क्यों न हों) आर्थिक रूप से समृद्ध चीन से पीछे क्यों है, जो एक सामाजिक-फ़ासीवादी शासन है। यहाँ तक कि अरविन्द सुब्रमण्यम् जैसे बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों ने भी भारत और चीन के आर्थिक विकास के इतिहास की व्याख्या करने में असमर्थता के लिए इस सिद्धान्त की आलोचना की है, जहाँ दुनिया की आबादी का लगभग 35% हिस्सा बसता है। साथ ही, यह सिद्धान्त तमाम देशों में उन उदार पूँजीवादी संस्थाओं के ह्रास के कारणों की व्याख्या करने में असमर्थ है जिनकी वह इतने लगाव से सराहना करता है।

अगर इसी सिद्धान्त के तर्क को आगे बढ़ाया जाये और इतिहास पर लागू किया जाये तो हम देख सकते हैं कि इस सिद्धान्त में कोई निरन्तरता नहीं है। इन अर्थशास्त्रियों का दावा है कि पर्यावरण और प्रौद्योगिकी की आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका नहीं होती है और उपनिवेशवादियों की बसाहट योजना एक उपनिवेशित देश में संस्थाओं के विकास और चरित्र को निर्धारित करती है। लेकिन क्या यूरोपीय उपनिवेशवादी वहीं नहीं बसे जहाँ पर्यावरण उनके अनुकूल था? और अगर, इन तीनों के अनुसार, उपनिवेशवादियों की बसाहट ही संस्थाओं की 'समावेशिकता' को निर्धारित करती है तो अन्ततः यह किसी देश के प्राकृतिक संसाधन, अनुकूलनीयता व श्रम संसाधन ही वे कारक हैं जो ये निर्धारित करते हैं कि देश में उदार पूँजीवाद की तथाकथित 'समावेशी' संस्थाएँ होंगी या नहीं, और इसके आधार पर आर्थिक विकास होगा या नहीं!

व्यापक रूप से कहें तो यह सिद्धान्त पूँजीवाद के इतिहास पर उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के ख़ूनी धब्बों को हटाने और पूँजीवाद को उत्पादन के सबसे उपयुक्त तरीक़े के रूप में दिखलाने का प्रयास करता है। इसे साम्राज्यवादी देशों व बैंकों द्वारा वित्तपोषित अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला है, तो यह अकारण नहीं है और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

विश्व सर्वहारा के महान क्रान्तिकारी शिक्षक एंगेल्स के जन्मदिवस (28 नवम्बर) पर

• ध्रुव

विश्व सर्वहारा के महान शिक्षक फ़्रेडरिक एंगेल्स का जन्म 28 नवम्बर 1820 को जर्मनी के राइन प्रान्त में एक धनी व्यापारी व उद्यमी के परिवार में हुआ था। उनके पिता एक कपड़ा फ़ैक्ट्री के मालिक थे। कार्ल मार्क्स के अनन्य मित्र एंगेल्स ने एक व्यवसायी परिवार में पैदा होने के बावजूद अपना पूरा जीवन मज़दूर वर्ग के मुक्ति संघर्ष में लगा दिया। वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के सिद्धान्त ऐतिहासिक और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को सूत्रबद्ध करने में मार्क्स के साथ एंगेल्स का भी प्रमुख योगदान रहा है।

एक व्यवसायी के परिवार में पैदा होने की वजह से शुरू से ही एंगेल्स पर अपने पिता के काम को सँभालने का दबाव था। 17 साल की उम्र में ही एंगेल्स ने पिता के दबाव की वजह से व्यावसायिक अनुभव लेना शुरू कर दिया। लेकिन युवा एंगेल्स का मन इन कामों में बिल्कुल नहीं लगता था। वे कविताएँ लिखते, दार्शनिक बहसों में भाग लेते, प्रकृति और समाज के तमाम सवालों पर चिन्तन-मनन करते थे। इसी दौरान वे हेगेल के दर्शन से काफी प्रभावित हुए और यंग हेगेलियन ग्रुप में शामिल हो गये। उस समय पूरे जर्मनी के ही युवाओं के बीच हेगेल के दर्शन का एक आर्कषण था जिससे एंगेल्स भी अछूते न रह सके। अपने पिता की फ़ैक्ट्री में काम करने के दौरान ही एंगेल्स ने मज़दूरों के बेहद कठिन जीवन को क़रीब से देखा। वे लगातार मज़दूरों की बस्तियों में जाते रहे और उनके हालात का अध्ययन करते रहे, साथ ही अपने व्यावसायिक कामों के दौरान उन्हें पूँजीवादी उद्योगों की कार्य-प्रणाली को नज़दीक से देखने और समझने का मौक़ा मिला। पूँजीवादी शोषण की पूरी व्यवस्था को देखने के बाद एंगेल्स ने मज़दूर वर्ग की मुक्ति के ऐतिहासिक मिशन को ही अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना लिया।

एंगेल्स विलक्षण बौद्धिक प्रतिभा के धनी थे। दर्शन और इतिहास के अलावा प्रकृति विज्ञान, सैन्य विज्ञान, भाषा शास्त्र जैसे विषयों पर उनका बहुत विशद अध्ययन था। दस से अधिक भाषाएँ जानने वाले एंगेल्स ने नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन की कृतियों को पढ़ने के लिए सत्तर वर्ष की उम्र में नार्वे की भाषा सीखी।

अपने शुरुआती दौर में एंगेल्स ने फ़्रेडरिक ओसवाल्ड के छद्म नाम से एक पत्रकार के रूप में भी काम किया। उनके शुरुआती प्रभावशाली लेखन में लेटर्स फ्रॉम वुपर्टल (1839) शामिल थे, जो शुरुआती औद्योगिकीकरण की बुराइयों का प्रत्यक्षदर्शी विवरण और राइनलैंड जिले में प्रान्तीय बुर्जुआ पाखण्ड पर हमला था, जहाँ वे बड़े हुए थे।

एंगेल्स की असामान्य प्रतिभा के बारे में ज़िक्र करते हुए अपनी पुस्तक **"फ्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ"** में जेल्डा कोट्स ने लिखा है – "एंगेल्स ने अपनी दार्शनिक अन्तर्दृष्टि और प्रखर प्रतिभा के फलस्वरूप बहुद जल्द पूँजीवादी उत्पादन की वास्तविक प्रकृति एवं मज़दूरों की वर्तमान भूमिका तथा उनके महान ऐतिहासिक भविष्य को समझा तथा 'डायचे-फ्रांज़ीजिए यारबुखेर' नामक पत्रिका में उन्होंने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की एक आलोचना प्रकाशित की। इसे मार्क्स ने सच्ची प्रतिभा का रेखाचित्र केवल इसलिए नहीं बताया था कि उसमें तफ़सील की गलतियाँ और मूल्यांकन की भूलें नहीं थीं, बल्कि इसलिए भी कि जिस तरह पूँजीवादी उत्पादन के तीव्र विकास और अमानवीय प्रभाव की उन्होंने विवेचना की थी, उसको देखकर वह अत्यधिक प्रभावित थे। इसमें, माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त, व्यापारिक संकटों, मज़दूरी के नियमों, विज्ञान की प्रगति आदि पर उनके विचारों में, वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के काफ़ी फलदायक बीज सन्निहित थे।"

केवल 22 वर्ष की उम्र में (जबकि वो मज़दूरों के जीवन की कठिनाइयों के स्वयं भुक्तभोगी नहीं थे और परिवार, शिक्षा और पेशे से पूँजीपति वर्ग से आते थे) जिस तरीक़े से उन्होंने तत्कालीन इंग्लैण्ड के दलों और वर्गों का मूल्याकन किया और उनकी सच्चाइयों को सामने रखा वह दिखलाता है कि वो कितनी गहराई से चीजों का मूल्यांकन करते थे।

एंगेल्स न केवल अध्ययन-मनन करते थे बल्कि वे मज़दूरों के तमाम संघर्षों और आन्दोलनों में लगातार सक्रिय भी रहते थे। इंग्लैण्ड में मज़दूरों के ऐतिहासिक चार्टिस्ट आन्दोलन से भी वे जुड़े थे। इन्हीं सारे अनुभवों को लेकर उन्होंने 1844 में 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक की विशेषता केवल यह नहीं थी कि इसमें मज़दूर वर्ग की जीवन दशा का सही विवरण प्रस्तुत किया गया था बल्कि युवा लेखक एंगेल्स की इस किताब की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें पूँजीवादी उत्पादन के मर्म और पूँजीवादी समाज में निहित विरोधाभासों को पूरी तरह से उजागर किया गया था। पुस्तक में मुख्य तौर पर इस बात का ज़िक्र था कि किस प्रकार पूँजीवादी उद्योग ने आधुनिक सर्वहारा वर्ग को जन्म दिया है? और किस प्रकार मज़दूर ग़ुलामी से भी बदतर ज़िन्दगी जीते हैं? मज़दूर अपनी शारीरिक शक्ति और हुनर को ही नहीं, बल्कि जब तक कुशल संगठन के असली महत्व को नहीं जान लेता तब तक अपनी आत्मा को भी उत्पादन के स्वामी अर्थात पूँजीपति के हाथों बेचने

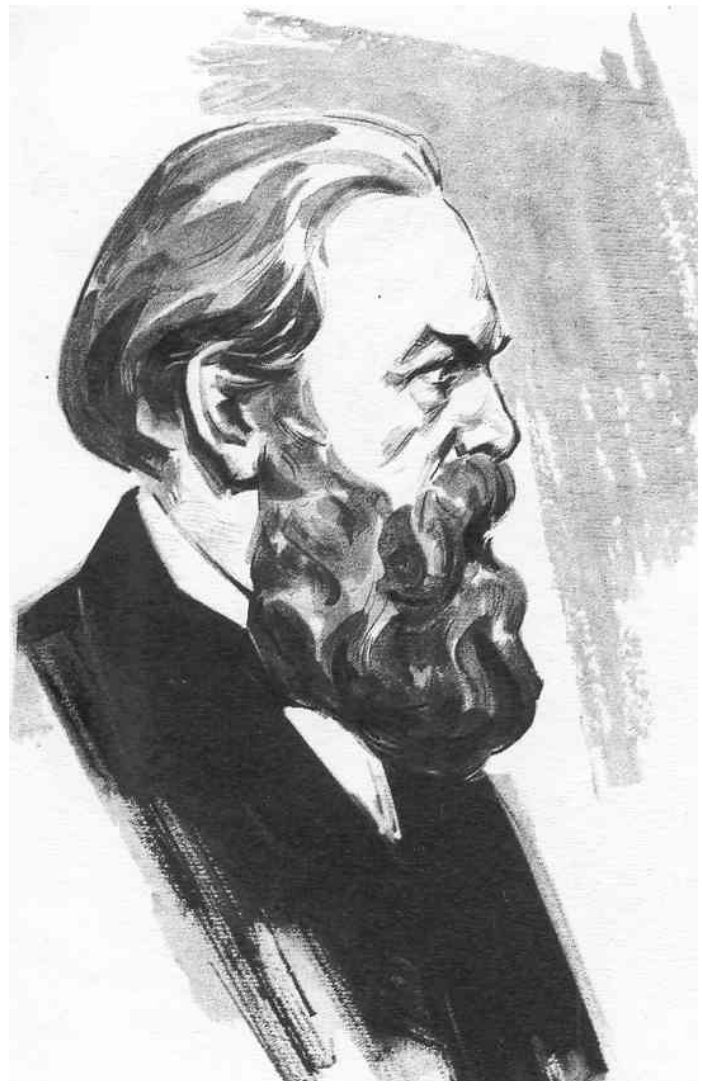

को मजबूर होता है।

जिस वर्ष एंगेल्स ने इस पुस्तक के प्रकाशन का काम पूरा किया ठीक उसी वर्ष मार्क्स से उनकी पहली मुलाकात हुई। इसके बाद ही शुरुआत हुई एक ऐतिहासिक और सच्ची मित्रता की जिसने युग प्रवर्तक की भूमिका निभाते हुए मज़दूर वर्ग को पूँजीवादी दासता से मुक्ति का रास्ता दिखलाया। इस महान दोस्ती की बुनियाद में एक वैचारिक एकता थी, साथ ही मज़दूर वर्ग के मुक्ति का साझा स्वप्न भी था। मार्क्स-एंगेल्स की दोस्ती ने एक ऐसी मिसाल क़ायम की जिसके बारे में लेनिन ने लिखा है, "प्राचीन इतिहास में मित्रता के ही कितने ही हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। यूरोपीय सर्वहारा वर्ग कह सकता है कि उसके विज्ञान की रचना दो ऐसे विद्वानों और योद्धाओं ने की है, जिनके पारस्परिक सम्बन्धों ने प्राचीन लोगों के मानवीय मैत्री की सर्वाधिक हृदयस्पर्शी गाथाओं को भी पीछे छोड़ दिया है।"

वैसे तो मार्क्स से मुलाकात से पहले ही मार्क्स और एंगेल्स के विचारों में इतनी समानता थी कि पूँजीवादी समाज के बारे में दोनों ही लगभग समान निष्कर्ष तक पहुँच चुके थे। इसी का परिणाम था कि अपनी पहली मुलाकात के वर्ष में ही दोनों के साझे प्रयास से "पवित्र परिवार" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। जिसका उद्देश्य मुख्यतः जनता के लिए परिकल्पनात्मक दर्शन की भ्रान्तियों का खण्डन करना था। 'पवित्र परिवार' के प्रकाशित होने से पहले ही एंगेल्स ने मार्क्स और रूगे की जर्मन फ्रांसीसी पत्रिका में अपनी रचना "राजनीतिक अर्थशास्त्र पर आलोचनात्मक निबन्ध" प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण से समकालीन, आर्थिक व्यवस्था की परिघटनाओं को जाँचा-परखा और पाया कि ये निजी स्वामित्व के प्रभुत्व के अनिवार्य परिणाम हैं। 1845 में एंगेल्स ने अपना व्यावसायिक जीवन और परिवार त्याग दिया और बार्मेन छोड़कर ब्रसेल्स चले गये। ब्रसेल्स में ही एंगेल्स ने मार्क्स के साथ मिलकर अपने दार्शनिक और आर्थिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का काम शुरू किया।

ब्रसेल्स में ही एंगेल्स ने मार्क्स के साथ मिलकर जर्मन लेबर यूनियन की स्थापना की और *डायचे ब्रसेरलर ज़ाइटूंग*, जो कि एक जर्मन समाचारपत्र था, के संचालन का काम शुरू किया। इस समाचारपत्र में एंगेल्स उन तमाम आन्दोलनों की ख़बर भेजते थे जो उस वक्त इंग्लैण्ड और जर्मनी में हो रहे थे। आगे चलकर वे 'लीग ऑफ दी जस्ट' के साथ भी जुड़ गये। मार्क्स और एंगेल्स की शिक्षाओं के प्रभाव में यह लीग 'इण्टरनेशनल कम्युनिस्ट लीग' के रूप में विकसित हुई। 1846 में मार्क्स-एंगेल्स की पुस्तक 'जर्मन विचारधारा' प्रकाशित हुई जिसमें इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा, ऐतिहासिक भौतिकवाद को पहली बार एक समग्र सिद्धान्त के रूप में तैयार किया गया था। एंगेल्स ने बाद में कहा कि इस सिद्धान्त, जिसने सामाजिक विकास के वास्तविक नियमों को और समाज के को विज्ञान में क्रान्ति ला दी, ने मार्क्स की पहली महान खोज को मूर्त रूप दिया, जिसने समाजवाद को यूटोपिया से विज्ञान में बदलने में मुख्य भूमिका निभायी। "जर्मन विचारधारा" मार्क्सवाद की पहली परिपक्व रचना है।

1848 ही वह वर्ष था 'जब दुनिया के मज़दूरों एक हो!' के जीवन्त उद्घोष के साथ इण्टरनेशनल कम्युनिस्ट लीग का घोषणापत्र 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसने पूरी दुनिया में समाजवाद की स्थापना के संघर्ष में लगे तमाम क्रान्तिकारियों का पथ-प्रदर्शित किया और मज़दूर वर्ग के मुक्ति के संघर्ष को आलोकित करने का काम किया। कम्युनिस्ट घोषणापत्र के महत्व को रेखांकित करते हुए लेनिन ने लिखा है – "इस छोटी-सी पुस्तिका का मूल्य अनेकानेक ग्रन्थों के बराबर है: आज भी उसकी जीवन्त भाव-धारा समूचे सभ्य संसार के संगठित और संघर्षरत सर्वहारा को स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करती है।"

एंगेल्स की बौद्धिक क्षमता मार्क्स से किसी मामले में कम न थी लेकिन उन्होंने अपनी तमाम क्षमताओं को और जीवन का अधिकांश हिस्सा मार्क्स की रचनाओं को ही आगे बढ़ाने में लगा दिया। मार्क्स की महान रचना 'पूँजी' प्रकाशित न हो पाती अगर एंगेल्स न होते। एंगेल्स की मार्क्स के प्रति गहरी भावना के बारे में लेनिन ने लिखा है: "एंगेल्स सदा ही – और आम तौर से, बिल्कुल सही ही – अपने को मार्क्स के बाद रखते थे। अपने एक पुराने मित्र को उन्होंने लिखा था, 'मार्क्स के जीवनकाल में मैं हमेशा पूरक की भूमिका अदा करता था,' जीवित मार्क्स के प्रति उनका प्रेम और मृत मार्क्स के प्रति उनका सम्मान-भाव निस्सीम था। इस दृढ़ योद्धा और कठोर विचारक के अन्दर एक अत्यन्त प्रेमी आत्मा निवास करती थी।"

1864 में जब मार्क्स ने "अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ" की स्थापना की तो इसके कार्यों में एंगेल्स की सक्रिय भूमिका रही। 1874 में जर्मन सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी (एसपीडी) ने अपने अख़बार में प्रमुख नेता ऑगस्ट बेबेल द्वारा ड्यूहरिंग के काम के पक्ष में एक लेख प्रकाशित किया। ड्यूहरिंग के विचारों को लोकप्रियता मिलनी शुरू हुई। जिसके बाद एंगेल्स ने 'ड्यूरिंग मतखण्डन' नामक किताब लिखी जिसमें उन्होंने प्रकृति और समाज से सम्बन्धित ड्यूहरिंग के मूर्खतापूर्ण विचारों की धज्जियाँ उड़ा दी। साथ ही उन्होंने 'प्रकृति में द्वन्द्वात्मकता' (1883) और 'परिवार, निजी सम्पति और राज्य की उत्पति' (1884) जैसी कृतियों से द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूरी व्यवस्था

• फ़्रेडरिक एंगेल्स

पिछले एक लेख में हमने इस समयसिद्ध उक्ति पर विचार किया था, "काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी", और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं में काम के दिन की सबसे उचित मज़दूरी अनिवार्य रूप से मज़दूर के उत्पाद के सबसे अनुचित बँटवारे के समान होती है, उस उत्पाद का बड़ा हिसा पूँजीपति की जेब में जाता है, और मज़दूर को उतने से ही गुज़ारा करना पड़ता है जितने से वह ख़ुद को काम करने लायक बनाये रख सके और अपनी नस्ल को बढ़ा सके।

यह राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक नियम है, दूसरे शब्दों में, समाज के वर्तमान आर्थिक संगठन का एक नियम है, जो कि कोर्ट ऑफ़ चांसरी सहित इंग्लैंड के सभी सामान्य और वैधानिक क़ानूनों से अधिक शक्तिशाली है। जब तक समाज दो विरोधी वर्गों में बँटा हुआ है – जिसमें एक ओर हैं, उत्पादन के सभी साधनों, ज़मीन, कच्चे माल, मशीनरी पर एकाधिकार रखने वाले पूँजीपति; और दूसरी ओर हैं, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से पूरी तरह वंचित मेहनतकश, जिनके पास अपनी काम करने की शक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं होता; जब तक यह सामाजिक संगठन मौजूद है तब तक मज़दूरी का नियम सर्वशक्तिमान बना रहेगा, और हर दिन उन ज़ंजीरों को और मज़बूत बनाता रहेगा जो मेहनतकश इंसान को ख़ुद अपनी पैदावार का ग़ुलाम बनाये रखती हैं – जिस पर पूँजीपति का एकाधिकार होता है।

इस देश की ट्रेड यूनियनों को इस क़ानून के ख़िलाफ़ लड़ते हुए अब करीब साठ साल हो गये हैं – और नतीजा क्या रहा? क्या वे मज़दूर वर्ग को उन बन्धनों से मुक्त कराने में सपफल हुई हैं जिनमें पूँजी - ख़ुद उसके हाथों की पैदावार - ने उसे बाँध रखा है? क्या उन्होंने मज़दूर वर्ग के एक भी तबके को उजरती ग़ुलामों की स्थिति से ऊपर उठने में, उत्पादन के साधनों का, कच्चे माल, औज़ारों, अपने उद्योग में आवश्यक मशीनरी का स्वामी, और इस तरह अपने श्रम की पैदावार का स्वामी बनने में सक्षम बनाया है? सब जानते हैं कि न केवल उन्होंने ऐसा नहीं किया है बल्कि उन्होंने कभी कोशिश ही नहीं की है।

लेकिन इस नाते हम यह नहीं कह सकते कि चूँकि ट्रेड यूनियनों ने ऐसा नहीं किया है इसलिए उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। इसके विपरीत, इंग्लैण्ड में, और औद्योगिक उत्पादन करने वाले हर देश में, पूँजी के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के हर संघर्ष में ट्रेड यूनियनें उसके लिए ज़रूरी हैं। किसी भी देश में मज़दूरी की औसत दर उस देश में आम जीवन स्तर के अनुसार मज़दूरों की नस्ल को जिन्दा रहने के लिए आवश्यक बुनियादी वस्तुओं के योग के बराबर होती है। यह जीवन स्तर अलग-अलग श्रेणियों के मज़दूरों के लिए अलग-अलग हो सकता है।

मज़दूरी की दर ऊँची बनाये रखने और काम के घण्टे कम करने के संघर्ष में ट्रेड यूनियनों का बहुत बड़ा लाभ यह है कि वे जीवन स्तर ऊँचा बनाये रखने और उसे बेहतर करने में मदद करती हैं। लंदन के पूर्वी भाग में बहुत से पेशे ऐसे हैं जिनका श्रम राजगीर मिस्त्रियों तथा राजगीर के साथ काम करने वाले मज़दूरों से अधिक कुशल और उनके जैसा कठिन नहीं है, पिफर भी वे इसके मुकाबले आधी मज़दूरी ही कमा पाते हैं। क्यों? सिपर्फ इसलिए क्योंकि एक शक्तिशाली संगठन पहले वाले मज़दूरों को तुलनात्मक रुप से ऊँचा जीवन स्तर बनाये रखने में सक्षम बनाता है जिससे उनकी मज़दूरी निर्धारित होती है - जबकि दूसरे वाले मज़दूरों को असंगठित और कमज़ोर होने के नाते अपने नियोक्ताओं के अपरिहार्य और मनमाने अतिक्रमण का शिकार होना पड़ता है; उनका जीवन स्तर लगातार गिरता जाता है, वे लगातार कम से कम मज़दूरी पर जीना सीख लेते हैं, और उनकी मज़दूरी स्वाभाविक रूप से उस स्तर तक गिर जाती है जिसे उन्होंने खुद पर्याप्त मान लेना सीख लिया है।

यानी, मज़दूरी का नियम ऐसी रेखा नहीं खींचता जिसमें लचीलापन न हो। यह कुछ सीमाओं के साथ अटल नहीं है। हर समय ;महामंदी को छोड़करद्ध हर ट्रेड के लिए एक ख़ास दायरा होता है जिसके भीतर दोनों विरोधी पक्षों के संघर्ष के परिणामस्वरूप मज़दूरी की दर में संशोधन हो सकता है। हर मामले में मज़दूरी का निर्धारण सौदेबाज़ी से होता है और सौदेबाज़ी में जो सबसे देर तक और सबसे अच्छी तरह प्रतिरोध करता है उसीके पास अपने देय से अधिक पाने का सबसे अधिक मौका रहता है। अगर कोई अकेला मज़दूर पूँजीपति के साथ सौदेबाज़ी की कोशिश करता है तो वह आसानी से मात खा जाता है और उसे अपनेआप समर्पण करना पड़ता है, लेकिन अगर किसी पेशे के सभी मज़दूर एक शक्तिशाली संगठन बना लेते हैं, अपने बीच से इतना कोष जमा कर लेते हैं जिससे वे जरूरत पड़ने पर अपने नियोक्ताओं के खिलाफ़ जा सकें, और इस प्रकार इन नियोक्ताओं से एक ताक़त के तौर पर मुक़ाबला करने में सक्षम हो जाते हैं, तभी, और सिपर्फ तभी, उन्हें वह थोड़ी-सी रकम मिल सकती है जिसे वर्तमान समाज के आर्थिक संगठन के अनुसार, काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी कहा जा सकता है।

ट्रेड यूनियनों के संघर्ष से मज़दूरी का नियम पलट नहीं जाता। इसके विपरीत वे इसे लागू कराती हैं। ट्रेड यूनियनों के प्रतिरोध के बिना मज़दूर को वह भी नहीं मिलता जो मज़दूरी व्यवस्था के अनुसार उसे मिलना चाहिए। ट्रेड यूनियनों के डर से ही पूँजीपति को उसके मज़दूर की श्रम शक्ति का पूरा मूल्य देने के लिए मजबूर किया जा सकता है। आपको सबूत चाहिए? बड़ी ट्रेड यूनियनों के सदस्यों को मिलने वाली मज़दूरी देखिये, और दुख तकलीफ़ से भरे उस गड्ढे, लंदन के उस पूर्वी इलाके में असंख्य छोटे-छोटे पेशो के कामगारों को मिलने वाली मज़दूरी को देख लीजिए।

इस तरह ट्रेड यूनियनें मज़दूरी व्यवस्था पर हमला नहीं करतीं। लेकिन मज़दूरी कम या ज्यादा होने से मज़दूर वर्ग की आर्थिक अवनति नहीं होती। यह अवनति इस तथ्य में निहित होती है कि अपने श्रम की पूरी पैदावार प्राप्त करने के बजाय मज़दूर वर्ग को अपनी पैदावार के एक हिस्से से सन्तुष्ट होना पड़ता है जिसे मज़दूरी कहते हैं। पूँजीपति सारी पैदावार को हड़प लेता है ;उसी में से वह मज़दूर का भुगतान करता हैद्ध क्योंकि श्रम के साधनों पर उसका मालिकाना होता है। और, इसलिए, जब तक मज़दूर वर्ग काम के सभी साधनों – ज़मीन, कच्चा माल, मशीनरी, आदि का – और इस प्रकार अपनी समस्त पैदावार का मालिक नहीं बन जाता तब तक वह वास्तव में मुक्त नहीं हो सकता।

('द लेबर स्टैण्डर्ड' अख़बार में प्रकाशित मई, 1881)

"आजकल के हमारे पूरे समाज का यही आर्थिक ढाँचा है: सभी प्रकार का मूल्य केवल मज़दूर वर्ग ही उत्पन्न करता है। कारण, मूल्य श्रम का ही दूसरा नाम है, वह नाम, जो आजकल के हमारे पूँजीवादी समाज में किसी ख़ास माल के उत्पादन में लगे सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा को दिया जाता है। लेकिन मज़दूरों द्वारा उत्पन्न इन मूल्यों पर मज़दूरों का अधिकार नहीं होता। उन पर अधिकार होता है कच्चे माल, मशीनों, औज़ारों तथा आरक्षित निधियों के मालिकों का, जो मालिकों को मज़दूर वर्ग की श्रम-शक्ति को ख़रीदने का सुयोग प्रदान करते हैं। इसलिए मज़दूर वर्ग जो राशि उपज पैदा करता है, उसमें से उसे केवल एक हिस्सा ही वापस मिलता है। और, जैसा कि हमने अभी देखा, उसका दूसरा हिस्सा, जो पूँजीपति अपने पास रख लेता है, जिसमें से उसे ज़्यादा से ज़्यादा ज़मींदार के साथ हिस्सा बँटाना पड़ता है, हर नये आविष्कार तथा खोज के साथ बढ़ता जाता है, जबकि मज़दूर वर्ग के हिस्से में आनेवाला भाग (प्रति आदमी के हिसाब से) या तो बहुत ही धीरे-धीरे और बहुत ही कम बढ़ता है, या बिल्कुल ही नहीं बढ़ता और बाज़ सूरतों में तो वह घट भी सकता है।

लेकिन ये आविष्कार और खोजें, जो नित्य बढ़ती हुई गति से एक दूसरे से आगे बढ़ रही हैं, मानव-श्रम की उत्पादनशीलता, जो दिन-ब-दिन इतनी तेज़ी के साथ बढ़ रही है कि पहले सोचा भी नहीं जा सकता था, अन्त में जाकर एक ऐसा टकराव पैदा करती हैं, जिसके कारण आज की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विनाश निश्चित है। एक ओर, अकूत धन-सम्पत्ति और मालों की इफ़रात है, जिनको ख़रीदार ख़रीद नहीं पाते; दूसरी ओर, समाज का अधिकांश भाग है, जो सर्वहारा हो गया है, उजरती मज़दूर बन गया है और जो ठीक इसीलिए इन इफ़रात मालों को हस्तगत करने में असमर्थ है। समाज के एक छोटे-से अत्यधिक धनी वर्ग और उजरती मज़दूरों के एक विशाल सम्पत्तिविहीन वर्ग में बँट जाने के परिणामस्वरूप उसका ख़ुद अपनी इफ़रात से गला घुटने लगता है, जबकि समाज के सदस्यों की विशाल बहुसंख्या घोर अभाव से प्रायः अरक्षित है या नितान्त अरक्षित तक है। यह वस्तुस्थिति अधिकाधिक बेतुकी और अधिकाधिक अनावश्यक होती जाती है। इस स्थिति का अन्त अपरिहार्य है। उसका अन्त सम्भव है। एक ऐसी नयी सामाजिक व्यवस्था सम्भव है, जिसमें वर्त्तमान वर्ग-भेद लुप्त हो जायेंगे और जिसमें– शायद एक छोटे-से संक्रमण-काल के बाद, जिसमें कुछ अभाव सहन करना पड़ेगा, लेकिन जो नैतिक दृष्टि से बड़ा मूल्यवान काल होगा–अभी से मौजूद अपार उत्पादक-शक्तियों का योजनाबद्ध रूप से उपयोग तथा विस्तार करके और सभी के लिए काम करना अनिवार्य बनाकर, जीवन-निर्वाह के साधनों को, जीवन के उपभोग के साधनों को तथा मनुष्य की सभी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास और प्रयोग के साधनों को समाज के सभी सदस्यों के लिए समान मात्र में और अधिकाधिक पूर्ण रूप से सुलभ बना दिया जायेगा।"

– कार्ल मार्क्स की पुस्तिका 'उजरती श्रम और पूँजी' में फ्रेडरिक एंगेल्स की भूमिका का एक अंश

विश्व सर्वहारा के महान क्रान्तिकारी शिक्षक एंगेल्स की याद में

भौतिकवाद के सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का काम किया।

मार्क्स की मृत्यु के बाद एंगेल्स जीवनपर्यन्त मार्क्सवाद की शिक्षाओं को समृद्ध करने में लगे रहे। अपनी तमाम छोटी-बड़ी रचनाओं के द्वारा एंगेल्स ने प्रकृति, समाज, दर्शन और विज्ञान के तमाम सवालों पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का काम किया। मार्क्स की रचना 'पूँजी' का प्रथम खण्ड मार्क्स के जीवन काल में ही प्रकाशित हो गया था। लेकिन मार्क्स की मृत्यु के बाद 'पूँजी' के अन्य दो खण्डों को सम्पादित करके प्रकाशित करने का श्रमसाध्य काम एंगेल्स ने किया। अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक एंगेल्स मार्क्स की कृतियों के सम्पादन और उनके प्रकाशन सम्बन्धी योजनाओं में लगे रहे।

लेनिन ने लिखा है- "मार्क्स की मृत्यु के बाद अकेले एंगेल्स यूरोपीय समाजवादियों के परामर्शदाता और नेता बने रहे। उनका परामर्श और मार्गदर्शन जर्मन समाजवादी, जिनकी शक्ति सरकारी यन्त्रणाओं के बावजूद शीघ्रता से और सतत बढ़ रही थी, और स्पेन, रूमानिया, रूस आदि जैसे पिछड़े देशों के प्रतिनिधि, जो अपने पहले क़दम बहुत सोच-विचार कर और सँभलकर रखने को विवश थे, सभी समान रूप से चाहते थे। वे सब वृद्ध एंगेल्स के ज्ञान और अनुभव के समृद्ध भण्डार से लाभ उठाते थे।"

6 अगस्त 1995 को लन्दन में एंगेल्स का निधन हो गया। उनकी इच्छानुसार उनके अवशेषों को समुद्र में बिखेर दिया गया। दुनिया के मज़दूर वर्ग के हृदय में उनके महान शिक्षक फ्रेडरिक एंगेल्स के लिए हमेशा गर्व और आदर का भाव बना रहेगा। उनकी शिक्षाएँ विश्व सर्वहारा के मुक्ति पथ को हमेशा आलोकित करती रहेंगी।

मेहनतकश जनता के पक्ष में खड़े महान कवि

गजानन माधव मुक्तिबोध

के जन्मदिवस (13 नवम्बर) के मौक़े पर उनकी कविताओं के कुछ अंश

ज़माने ने नगर से यह कहा कि
ग़लत है यह, भ्रम है
हमारा अधिकार सम्मिलित श्रम और
छीनने का दम है!
फिलहाल तसवीरें
इस समय हम
नहीं बना पायेंगे
अलबत्ता पोस्टर हम लगा जायेंगे।
हम धधकायेंगे।
मानो या मानो मत
आज तो चन्द्र है, सविता है,
पोस्टर ही कविता है!!
वेदना के रक्त से लिखे गये
लाल-लाल घनघोर
धधकते पोस्टर
गलियों के कानों में बोलते हैं
धड़कती छाती की प्यार भरी गरमी में
भाप-बने आँसू के खूंख़ार अक्षर!!

('चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता का अंश)

ज़िन्दगी की कोख में जनमा
नया इस्पात
दिल के खून में रंगकर।
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव देह धारण कर
असंख्यक स्त्री-पुरुष-बालक
बने, जग में, भटकते हैं
कहीं जनमे
नये इस्पात को पाने।
झुलसते जा रहे हैं आग में
या मुँद रह हैं धूल-धक्कड़ में,
किसी की खोज है उनको
किसी नेतृत्व की

('मेरे लोग' कविता का एक अंश)

अरे! जन-संग-ऊष्मा के
बिना, व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते।
प्रयासी प्रेरणा के स्रोत,
सक्रिय वेदना की ज्योति
सब साहाय्य उनसे लो।
तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी।
कि तद्गत लक्ष्य में से ही
हृदय के नेत्र जागेंगे,
व जीवन-लक्ष्य उनके प्राप्त
करने की क्रिया में से
उभर ऊपर
विकसते जायेंगे निज के
तुम्हारे गुण
कि अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले में नहीं मिलते।
... ...

मुझ पर क्षुब्ध बारूदी धुएँ की झार आती है
व उन पर प्यार आता है
कि जिनका तप्त मुँह
सँवला रहा है
धूम लहरों में
कि जो मानव भविष्यत्-युद्ध में रत है,
जगत की स्याह सड़कों पर।
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
सभी प्रश्नोत्तरी की तुंग प्रतिमाएं
गिराकर तोड़ देता हूं हथौड़े से
कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उत्तर और भी छलमय,
समस्या एक-
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त
कब होंगे?
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
उमगकर
जन्म लेना चाहता फिर से
कि व्यक्तित्वान्तरित होकर,
नये सिरे से समझना और जीना
चाहता हूँ, सच!!

('चकमक की चिनगारियाँ' कविता के अंश)

अगर मेरी कविताएँ पसन्द नहीं
उन्हें जला दो,
अगर उसका लोहा पसन्द नहीं
उसे गला दो,
अगर उसकी आग बुरी लगती है
दबा डालो
इस तरह बला टालो!!
लेकिन याद रखो
वह लोहा खेतों में तीखे तलवारों का जंगल बन सकेगा
मेरे नाम से नहीं, किसी और नाम से सही,
और वह आग बार-बार चूल्हे में सपनों-सी जागेगी
सिगड़ी में ख्यालों सी भड़केगी, दिल में दमकेगी
मेरे नाम से नहीं किसी और नाम से सही।
लेकिन मैं वहाँ रहूँगा,
तुम्हारे सपनों में आऊँगा,
सताऊँगा
खिलखिलाऊँगा
खड़ा रहूँगा
तुम्हारी छाती पर अड़ा रहूँगा।

('भूमिका' कविता का अंश)

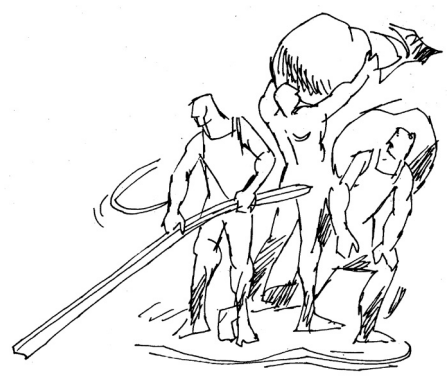

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

"हिन्दू जोड़ो यात्रा" के अगुवा बागेश्वर धाम के धीरेन्द्र शास्त्री के नाम एक सरोकारी हिन्दू का खुला पत्र

श्रीमान धीरेन्द्र शास्त्री, मीडिया के हवाले से ख़बर मिली कि आप अपने क्षेत्र में "हिन्दू जोड़ो पदयात्रा" निकाल रहे हैं! भगवामय इस यात्रा द्वारा आपने "हिन्दू एकता" का आह्वान किया है। आपकी इस पहल के लिए मेरे पास कुछ ठोस सुझाव हैं। सुझाव क्या, कहिए तो सही मायने में यही 'हिन्दू एकता' का रास्ता है। इससे हिन्दुओं को बाँटने वाली ताक़त का ख़ात्मा हो जायेगा। करोड़ों-करोड़ हिन्दू आबादी हर रोज़ जिस ख़तरे का सामना करती है, उससे लोहा लेना ही होगा, तभी तो सही मायनों में "हिन्दू एकता" स्थापित हो सकती है!

सबसे पहले सबसे ज़रूरी सुझाव

हमने देखा है कि एक हिन्दू जो पैसे वाला है, कारख़ाना-मालिक है, पूँजीपति है, धनी व्यापारी है और दूसरा हिन्दू जो मज़दूर, मेहनतकश है, ग़रीब है, उनके बीच बहुत भारी अन्तर है। पहले वाला हिन्दू दूसरे वाले को न्यूनतम मज़दूरी नहीं देता, 8 घण्टे के काम के दिन का अधिकार नहीं देता, उनके बोनस व अन्य लाभ चोरी कर-करके अपनी तिजोरी भर रहा है, जबकि दूसरा ग़रीब मेहनतकश मज़दूर हिन्दू उसके शोषण के जुए के नीचे पिस रहा है, जबकि अमीर मालिक-सेठ-व्यापारी हिन्दुओं की समस्त समृद्धि की बुनियाद में तो इस ग़रीब मेहनतकश हिन्दू की मेहनत और ख़ून-पसीना है! इन दोनों हिन्दुओं में एकता एक ही तरह से स्थापित हो सकती है: सारे हिन्दुओं को मेहनत-मशक़्क़त और शारीरिक श्रम करना चाहिए जिससे कि समाज की समूची सम्पदा पैदा होती है। **अगर कुछ हिन्दू मालिक बने रहें और कुछ उनके मज़दूर, तो "हिन्दू एकता" कैसे स्थापित होगी?**

शास्त्री जी इतने समझदार हैं, उनके पास तो ज्ञान की गंगोत्री है, तो वे सारे अमीर, मालिक, सेठ, व्यापारी, ठेकेदार हिन्दुओं को यह सन्देश क्यों नहीं देते कि सबसे पहले तो मज़दूरों के सारे क़ानूनी अधिकार उनको दें और सारे श्रम क़ानून लागू करें। और वैसे तो उन्हें कल-कारख़ानों, खेतों-खलिहानों, और खानों-खदानों पर सारे हिन्दुओं के सामूहिक मालिकाने का आह्वान करना चाहिए और कहना चाहिए कि जो मेहनत करे, वही रोटी खाये! अगर ऐसा हो जाये, तो शास्त्री जी भी समझते होंगे, कि "हिन्दू एकता" का उनका महान सपना पूरा हो जायेगा।

कल कारख़ानों, खानों-खदानों का मालिकाना कुछ हिन्दुओं के पास है, अम्बानी, अडानी जी जैसों के पास, और हिन्दुओं का एक बड़ा हिस्सा है, जो कारख़ानों में मज़दूरी करता है और बमुश्किल परिवार पाल पाता है, ज़्यादातर समय बेरोज़गार घूमता है, चप्पल फटकारता है, हालात बुरे हों तो जान तक देने पर मजबूर होता है! ऐसी स्थिति बनी रहेगी, तो भला "हिन्दू एकता" कैसे स्थापित होगी? एक हिन्दू दूसरे हिन्दू को लूटेगा, उसका शोषण करेगा, उसकी मेहनत की कमाई निगल जायेगा, अधिकार माँगने पर उसे गुण्डों और पुलिस से पिटवायेगा, उसका अपमान करेगा, तो फिर "हिन्दू एकता" कैसे स्थापित होगी?

हमें इस मामल में भी हिन्दुओं की एकता स्थापित करने की ज़रूरत है, असल में कहिए तो, सबसे पहले यहीं स्थापित करने की ज़रूरत है। एक हिन्दू मालिक और बहुत से हिन्दू आधुनिक दास हों, आखिर कैसे हिन्दुओं के बीच इस अन्तर को एक सच्चा हिन्दू बर्दाश्त करे!? इसलिए सब कल-कारख़ानों, खानों-खदानों, खेतों-खलिहानों का मालिकाना कुछेक हिन्दुओं के हाथों से लेकर 80 करोड़ हिन्दुओं के हाथों में दे देना होगा! तब होगी सही अर्थों में हिन्दुओं की एकता और तब होगा धीरेन्द्र शास्त्री जी का सपना पूरा!

जैसा कि हमने कहा, इसकी शुरुआत करते हुए सबसे पहले सभी हिन्दू मालिकों-ठेकेदारों को हिन्दू मज़दूरों के लिए न्यूनतम वेतन लागू कर, ठेका प्रथा का ख़ात्मा कर, पक्का रोज़गार देकर, आठ घण्टे काम व अन्य श्रम क़ानूनों को लागू कर एक सुन्दर और पावन धार्मिक पहल करनी चाहिए! अगर शास्त्री जी अपने हज़ारों-लाखों मालिक व ठेकेदार हिन्दू भक्तों को यह आदेश दे दें, तो क्या भला वे इस आदेश को टाल पायेंगे? नहीं!

तो अगर शास्त्री जी चाहें तो "हिन्दू एकता" स्थांपित करने के लिए अपनी यात्रा को सभी औद्योगिक इलाकों व पूँजीपतियों के रिहायशी इलाकों से गुज़ारकर सभी मालिकों, ठेकेदारों, व्यानपारियों को यह प्रवचन दे सकते हैं और अपने भक्त मालिकों-ठेकेदारों को तो वे आदेश भी दे सकते हैं!

हर रोज़ हज़ारों हज़ार की संख्या में हमारे हिन्दू बच्चे इलाज़ के अभाव, ग़रीबी, बीमारी के कारण मारे जाते हैं। गाँव-देहातों से लेकर शहर के झुग्गी-झोपड़ी वाले इलाकों में रहने वाले अपने हिन्दू भाइयों-बहनों तक इलाज़ की पहुँच नहीं है। **अब समय आ गया है, हिन्दुओं की स्वस्थ एकता यानी "स्वस्थ हिन्दू एकता" हासिल करने का! इसलिए अब से सभी हिन्दू लोगों का इलाज हिन्दू मालिकों के अस्पतालों में मुफ़्त किया जाये! अगर सारे हिन्दू अस्पताल मालिक धीरेन्द्र शास्त्री जी महाराज के आदेश पर यह कदम उठा दें, तो हिन्दू भाइयो-बहनो, ज़रा सोचिए, क्या चट्टानी "हिन्दू एकता" स्थापित होगी!**

"हिन्दू एकता" बनाने के लिए एक और महत्वतपूर्ण कदम उठाना होगा! हिन्दुओं के बच्चे ही तो "हिन्दू राष्ट्र" को विश्वगुरु बनायेंगे! इसके लिए हिन्दू मालिकाने वाले तमाम निजी स्कूलों में हिन्दू बच्चों को मुफ़्त शिक्षा दी जाये, यह आह्वान श्री धीरेन्द्र शास्त्री को करना चाहिए। **बच्चों की शिक्षा में हर प्रकार के अन्तर को ख़त्म कर सभी हिन्दू बच्चों के लिए, चाहे वह राष्ट्रपति की सन्तान हो या किसी सन्तरी की, सबको एक समान मुफ़्त शिक्षा दी जाये, और "हिन्दू एकता" की नींव बचपन से ही मज़बूत की जाये!**

हिन्दुओं की काफ़ी ताक़त सड़कों पर बरबाद हो रही है! कई करोड़ हिन्दू फ़ुटपाथ पर सोने के लिए मजबूर हैं! उनके पास अपना कोई घर नहीं है! हमें "हिन्दू एकता" स्थापित करनी है, इसलिए इन सभी हिन्दुओं को अपने साथ लेना होगा! इसके लिए **आलीशान कोठियों, बंगलों, बड़े-बड़े होटलों, सरायों, जागीरों के हिन्दू मालिक, व्यापक "हिन्दू एकजुटता" स्थापित करने के लिए, अपने हिन्दू भाइयों-बहनों के लिए, अपने बंगलों, कोठियों, होटलों के दरवाज़े खोल दें, और उनकी रिहायश का इन्तज़ाम करें! उनको ख़ुद रहने के लिए 3-4 कमरे ही तो चाहिए! बड़ा संयुक्त परिवार हो तो 6-7! लेकिन उसके बाद भी उनके बंगलों और फार्म हाउसों में कमरों और जगह की भरमार है। सारे हिन्दू बिल्डरों को अपने ख़ाली पड़े लाखों फ़्लैट ग़रीब मेहनतकश हिन्दू आबादी में बाँट देने चाहिए! ज़रा सोचिए, शास्त्री जी! अगर हिन्दुओं के बीच बेघरी ख़त्म हो जाये, तो कैसी अभूतपूर्व "हिन्दू एकता" क़ायम हो सकती है!**

सभी हिन्दू नेताओं-नौकरशाहों के बच्चे जो विदेशों में शिक्षा या नौकरी कर रहे हैं, उनको तत्काल वापस बुलाया जाये! उनकी पढ़ाई "हिन्दू राष्ट्र" के गुरुकुलों में होगी, तभी तो शक्तिवान होगा "हिन्दू राष्ट्र" और "हिन्दू एकता"!

"रामराज्य" में मर्यादा और धार्मिक उत्थान को आगे बढ़ाने और गन्दे-गन्दे विचारों के आगमन को रोकने के लिए हिन्दू पुरुषों व स्त्रियों के लिए धोती-कुर्ता व साड़ी अनिवार्य कर दी जाये! देश के सभी देशी-विदेशी कारख़ाने, जो पाश्चात्य शैली के वस्त्रों का निर्माण करते हैं, उनपर तत्काल ही ताला लटका दिया जाये! बल्कि ऐसे कारख़ानों के मालिक अगर हिन्दू हों, तो उन्हें ख़ुद खादी उद्योग में लग जाना चाहिए और पाश्चात्य वस्त्रों, जूतों आदि के कारख़ानों की जगह खड़ाऊँ और धोती आदि के कारख़ाने लगा लेने चाहिए! अगर शास्त्री जी यह बात मालिक हिन्दुओं को समझा दें, तो कोई शक्ति "हिन्दू एकता" के बनने में आड़े नहीं आ सकती!

"हिन्दू जोड़ो यात्रा" में सबसे पहले जात-पाँत को पूरी तरह से ख़त्म किया जाये। अगर हिन्दू एक है, तो फिर विभिन्न जातियाँ क्यों? "हिन्दू एकता" की पहली शर्त है, हिन्दुओं के जातिगत बँटवारे, ऊँच-नीच, छुआ-छूत, आदि का ख़ात्मा! इसके लिए धीरेन्द्र शास्त्री महाराज को सबसे पहले मिसाल पेश करनी चाहिए और यह घोषणा कर देनी चाहिए कि उन्होंने जात-पाँत का पूर्णत: त्याग कर दिया है! आज भी हिन्दुओं का एक हिस्सा हिन्दुओं के दूसरे हिस्से का छुआ पानी नहीं पी सकता। हिन्दुओं का एक हिस्सा, दूसरे हिस्से के इलाक़े से अपनी बारात पर घोड़ी पर बैठकर नहीं जा सकता, यहाँ तक की मूछें तक नहीं रख सकता। इसलिए **शास्त्री जी को "हिन्दू एकता" स्थापित करने के लिए सबसे पहले तो इस जातिवाद, ऊँच-नीच के ऊपर बुलडोज़र चलाना होगा! सुना है आपको भी बुलडोज़र से बड़ा लगाव है!**

हिन्दू एकता के लिए धीरेन्द्र शास्त्री महाराज को सबसे पहले तो अन्तरजातीय विवाह को बढ़ावा देना चाहिए और एक मिसाल पेश करने के लिए अपनी किसी प्रवचन सभा में ही कुछ दर्जन अन्तरजातीय प्रेमी जोड़ों के बीच जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता स्थापित कर देना चाहिए।

उनको सरकार से माँग उठानी चाहिए कि तमाम जाति-आधारित राजनीतिक मंचों, संगठनों को ख़त्म करने के लिए उनकी प्रिय सरकार संवैधानिक संशोधन करे। जो भी पार्टी या नेता चुनाव के लिए जाट-गैर जाट, मराठा-गैर मराठा, अगड़ा-पिछड़ा, आदि करता है, वह तो "हिन्दू एकजुटता" को कमज़ोर कर रहा है! ऐसी पार्टियों तथा नेताओं का पूर्णतया बहिष्कार करें, यह आह्वान शास्त्री जी को अपनी सभाओं में कर देना चाहिए! यह रोड़ा रास्ते से हट जाये, तो समझ लो बनी गयी "हिन्दू एकता"!

श्री धीरेन्द्र शास्त्री जी महाराज! यदि आप सही अर्थों में हिन्दुओं की एकता के हामी हैं तो आइए इन बिन्दुओं के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया जाये! मुझे पूरा भरोसा है कि शास्त्री जी "हिन्दू एकजुटता" के लिए आवश्यक ये कदम अवश्य उठायेंगे! शास्त्री जी की जय हो!

आपका तुच्छ सेवक और
परम शिष्य,
त्रिविक्रमा वक्रदृष्टि

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016